

କଥା କବି



क्लिअर फंडा

राजा राममोहन राय
पुस्तकालय प्रतिष्ठान कोलकाता
के सौजन्य से प्राप्त

हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर

किलयर फंडा

(व्यंग्य संग्रह)

महेशचंद्र द्विवेदी

हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर

प्रकाशक • हिन्दी साहित्य निकेतन

16 माहित्य विहार

बिजनौर (उ.प्र.)

टाइप सैटिंग : अनुभूति ग्राफिक्स बिजनौर (उ.प्र.)

आवरण : राम गर्ग एव दीपक अग्रवाल

मुद्रक • आदर्श प्रिंटर्स, दिल्ली 32

सस्करण • प्रथम 2000

मूल्य • एक सौ रुपये

CILAR FANDA (SATIRES) BY MAHESH CHANDRA DWIVEDI

ISBN-81-85139-60-1

Rs 100 00

समर्पण

स्व शंभूदयाल दुबे (पिता) की स्मृति में
एवं
श्रीमती पानकुँवर दुबे (माता) के चरणों में



व्यंग्य और वयंग

एक उर्दूदाँ मित्र ने एक दिन मुझसे पूछा था कि सुना है आजकल आप वयंग लिख रहे हैं। पहले तो बात मेरी समझ में नहीं आई थी पर चूँकि मैं मित्र के हिंदी-ज्ञान की सीमा से भिन्न था, अतः शीघ्र उनका अर्थ समझकर मैंने मुस्कराकर कहा, 'वयंग नहीं व्यंग्य'। मित्र झुँझलाहट से बोले, 'हाँ, हाँ! वही कह रहा हूँ वयंग।' यह सुनकर मुझे हँसी तो आई ही, साथ ही कुछ हास्य रचनाएँ हिंदी के बजाय उर्दू में लिखने की प्रेरणा भी मिली। इस सग्रह में भी 'नाचीज़ रकीब' व 'फितरत-ए-मौत' में उर्दू के शब्दों का बड़ी फ़राख़दिली से प्रयोग किया गया है। 'फितरत-ए-मौत' को नए शेख़चिल्ली की कहानी भी कहा जा सकता है। हिंदी की रचनाएँ जैसे 'डाकिनी' व 'अध्यक्षता एक कविसम्मेलन की' आदि भी हास्य की श्रेणी में रखी जा सकती हैं।

सग्रह की व्यंग्य-रचनाएँ एक तरह से मेरे दिल की भड़ास हैं—समाज में व्याप्त अज्ञान एवं पाखंड, राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार एवं तिकड़मबाजी तथा प्रशासन में व्याप्त चापलूसी एवं धनलिप्सा आदि ऐसे तथ्य हैं, जो किसी भी सवेदनशील व्यक्ति की आत्मा को दिन-रात कचोटते रहते हैं। संभवतः उनके निराकरण की असमर्थता के बोध ने ही व्यंग्य-रचनाएँ लिखने-हेतु मुझे प्रेरित किया होगा। मुझे लगता है कि इन्हे पढ़कर पाठकों को भी ऐसा लगेगा कि यही तो घटित हो रहा है हमारी आँखों के सामने, पर न चाहते हुए भी हम इनका विरोध करने के बजाय इन्हीं की धारा में क्यों बहने लगते हैं!

यद्यपि ये व्यंग्य किसी व्यक्ति-विशेष को लक्ष्य करके नहीं लिखे गए हैं तथापि यदि किसी घटना-विशेष के परिप्रेक्ष्य में किसी को ऐसा प्रतीत होता है, तो मैं उनसे अनुरोध करूँगा कि अपनी विशालहृदयता का परिचय देकर उसे 'व्यंग' भाव से लेंगे।

मैं अपनी पत्नी नीरजा द्विवेदी का आभारी हूँ, जिन्होंने स्वयं लेखिका होते हुए भी दूसरे लेखक की (मेरी) इन रचनाओं को ध्यानपूर्वक सुना व सुधारहेतु सुझाव दिए। इन रचनाओं को आपके समक्ष पुस्तक रूप में लाने हेतु मैं डा.गिरिराजशरण अग्रवाल का आभारी हूँ। इन रचनाओं के टंकन में श्रीमती आरती चतुर्वेदी एवं कु. ऋचा पारस का सहयोग प्रशंसनीय रहा है।

मैं कादंबिनी, मनोरमा, पुरवाई, पुलिस पत्रिका आदि के संपादकों का, जिन्होंने इनमें कई रचनाओं को अपनी पत्रिकाओं में स्थान दिया, भी आभार प्रकट करता हूँ।

16, गौतमपल्ली,
लखनऊ (उ.प्र.)

महेशचंद्र द्विवेदी

कुछ शहद, कुछ तेजाब

चुनाचे जनाब, इसे कहते हैं— जिंदादिली! अभी तक हम व्यंग्यवाले सखि-सखा पुलिसवालों पर व्यंग्य की बंदूक तानते थे। वक्त के साथ बंदूक घूम गई। पुलिस का एक शीर्षस्थ अधिकारी व्यंग्य रच रहा है। वह भी पुख्ता, मजबूत और मस्त-मस्त! महेश जी मेरे प्राचीनकाल से परिचित हैं, मगर मैं आज तक न जान पाया कि पुलिस अफसर की वर्दी-तले व्यंग्य महफूज है। पुरानी देसी कहावत— एक तो बाघ, ऊपर से बंदूक बाँधे! कमाल है, भय्ये!

अब जरा माल पर आइए! 'नाचीज़ रकीब' में क्या धारदार लखनवी जबान है, जिस पर मेरे अग्रज स्व. अमृतलाल शैदा थे। मैं शैदा हूँ। क्या महीन छीला है कि नाजनीनों की अँगुलियाँ मात। 'कलियुग की कौतुक कथा' में नया पैतरा है। महाभारत से लेकर व्यंग्य के चीरहरण तक का हुनर! 'इंग्लिदी' में अँग्रेजी ओवरकोट और भारतीय अँगोछे जैसा टकराव। गोदे का गेहुँ ह्यिदुस्तानी पर तीखा भाषाई और सास्कृतिक प्रहार! 'जन्मसिद्ध अधिकार' में निजी आजादी की भरपूर बखिया उधेड़ी गई है! 'सरदार जी का बगीचा' में मानवीय मूल्यों और स्नेह का सुदर्शन रूप। 'पारदर्शिता' में पारदर्शिता का रूप आरपार उकेरा है। और भी बहुत कुछ है! मगर बोहनी के समय ही कोई पूरा टोकरा नहीं खोल देता! परत-दर-परत खुलता है, जनाव।

महेश भाई के व्यंग्यो में हरिशंकर परसाई वाला तीखे प्रहार का घराना भले न हा, शरद जोशीनुमा शब्दों से खेलने वाला जादू न हो

मगर, क्षमा करे. के.पी. सक्सेना वाला सहला-सहला कर टीपे मारनेवाला हुनर है। आप इसे बड़बोलापन न समझें! सिर्फ चाकू की नोक चुभाना ही व्यंग्य का धर्म नहीं, सलीके से सहलाकर मरहम रखना भी व्यंग्य की जिम्मेदारी है। महेश भाई की कुछ पेशेवराना मजबूरियाँ भी हैं। एक उच्चस्थ पुलिस अधिकारी सत्ता, शासन और सड़ी हुई राजनीति को उतना सड़ा नहीं कह सकता, जितना मैं कह लेता हूँ। नई दुल्हन कितनी भी कर्नाट हो, ज्यादा चिम्टा नहीं बजाती! फिर भी भाषा, शैली और संप्रेषण का देखकर एक आस जरूर जागती है कि 'बटन-बिल्लो' की दासता से आजाद होकर व्यंग्य का यही शहद धीरे-धीरे तेजाब और तीखा तेजाब हो जाएगा। यही होता आया है।

काफ़ी कुछ लिखा-छपा जाने पर भी व्यंग्य-आई मीन शिष्ट व्यंग्य विशेषरूप से गद्य-व्यंग्य-की विरादरी अभी बहुत छाटी है। ज़बरदस्त परिवार नियोजन चल रहा है! ऐसे गुदगुदाने-लहरानेवाले ऑगन में कोई आता है, तो ढोलक की थाप गूँजना लाजमी है। महेश भाई के इस सग्रह का स्वागत होगा, बलाएँ ली जाएँगी, मेरा विश्वास है। पहली कुश्ती में ही अखाड़े में कोई गुरु हनुमान नहीं हो जाता। रगपुट्टे और दौंव निकालने में वक्त लगता है। थोड़ी शह दें आप फिर देखें तेवर। मेरी मंगलकामनाएँ! ... बस।

लखनऊ (उ.प्र.)

के.पी. सक्सेना

व्यंग्य-क्रम —

एक अनोखा क्यू	13
पौराणिक नाम	16
दाढी वृत्तांत	18
गैस	21
प्यासे है पेट्रोल पीजिए	23
पदच्युत इद्र	25
दो हजार पचीसी	28
भाड़े के पति (रेट ए हम्ब्रैड)	32
स्वभैसगार	34
एरिस्टो-डौग होटल	38

इग्लिदी	42
फितरत-ए-मोत	47
हिचकियोँ और हिचकियोँ	52
पारदर्शिता	56
श्वेत क्रांति	59
डाकिनी	63
नाचीज़ रकीब	67
कलियुग की कौतुक कथा	70
अँग्रेज भौजी	74
अध्यक्षता एक कविसम्मेलन की	78
जन्मसिद्ध अधिकार	83
सग्दार का बागीचा	88
घाघ	91
खाना	95
अहा! ग्राम्यजीवन	98
क्वियर फंडा	102
'जीरो टॉलरेंस बनाम इफाइनाइट टॉलरेंस'	106
खेटी अठन्नी का मलौटा	112

एक अनोखा क्यू

मैंने अपने जीवन में कभी ऐसा अनोखा क्यू नहीं देखा है, जैसा आज देख रहा हूँ। यद्यपि यह क्यू पहले से लगा है परंतु अपने ही खयालों में मस्त मैं इसे अभी तक नहीं देख सका था। कितना लंबा है यह क्यू कि आगे टिकट-विंडो दिखाई नहीं दे रही है और पीछे भी लगातार लोग इसमें लगते चले जा रहे हैं। मैं भी इस क्यू में लगा हूँ, यद्यपि क्यू में लगकर अपना टिकट कटाने की मेरी कोई चाह नहीं है। टिकट कटाकर उस पाग का शो देखने जाने के बाद कोई व्यक्ति मुझे वापस आता दिखाई नहीं दे रहा है। संभवतः शो बहुत लंबा है अथवा इतना रुचिकर है कि लोग एक बार के टिकट पर वहाँ का शो लगातार देखते रहना चाहते हैं।

मैं देख रहा हूँ कि क्यू में मेरे पीछे पान चबाती एक क्षीणकाय वृद्धा लगी हुई है। दमा और तपेदिक की मरीज़ मालूम हो रही है। उसे खड़ा होना दृभर हो रहा है, इसलिए मैंने शिष्टाचार के नाते अपनी जगह छोड़कर उन्हें अपने से आगे लग जाने को कहा, तो मुझे खा जानेवाली निगाहों से देखकर बोली, 'तुमसे आगे लगे मेरी जूती'। मैं घबराकर इधर-उधर देखने लगा। अरे! यहाँ तो सभी डम्बी फिराक में हैं कि वह टिकट-विंडो तक पहुँचने से बचते रहें। इसके लिए वे तमाम उपाय कर रहे हैं और अपना पैसा भी पानी की तरह बहा रहे हैं। मैं मन-ही-मन हँस रहा हूँ। भाई यही करना है तो क्यू में लगने का क्या शौक है', पर फिर सोचता हूँ कि मैं भी अपना कोई शौक पूरा करने को थोड़े ही इस क्यू में लगा हूँ।

क्यू में मेरे आगे एक लबा-तगडा दादा जैसा दिखाई देनेवाला व्यक्ति लगा हुआ है। वह किसी बात पर अपने आगे लगे हुए व्यक्ति से झगडा कर बैठता है। दोनों में गाली-गलौज, गुत्थम-गुत्था होने लगती है। अर यह क्या! उस दादा ने अगले व्यक्ति को उठाकर ऐसा फेंका कि सीधा टिकट-विंडो पर जाकर गिरा और उस तुरंत टिकट मिल गया। अब क्यू में लगे अन्य लोग शोर मचा रहे हैं कि क्यू-जंपिंग कराना अनियमितता है, अपराध है। दादा को पकड़ने व उसे भी शीघ्र टिकट-विंडो तक पहुँचाने का प्रयत्न कर रहे हैं परंतु दादा इतना चालाक है कि किसी-न-किसी तरह बच जाता है।

अचानक सब लोगो का ध्यान क्यू में पीछे एक स्थान की ओर खिंच जाता है। वहाँ में रोने-चिल्लाने एवं 'हर-हर महादेव', 'अल्लाहो-अकबर' की आवाज आ रही है। आस-पास के लोग दो समूहों में बँट हुए हैं। वे दूसरे समूह के लोगो को उठा-उठाकर क्यू-जंपिंग करा रहे हैं। ये फेंके हुए कुछ लोग तो टिकट-विंडो से पहले ही गिर जाते हैं और कुछ टिकट-विंडो पर पहुँच जाते हैं और उन्हें तुरंत टिकट प्राप्त हो जाता है। अब मैं गर्दन निकालकर अपने आगे व पीछे दूर-दूर तक क्यू को देखता हूँ तो कहीं जातियों के समूह, कहीं आतंकियों के समूह, कहीं नस्लवादियों के समूह, कहीं राजनीतिक अथवा आर्थिक स्वार्थियों के समूह तमाम अन्य व्यक्तियों को क्यू-जंपिंग कराने का उपाय करते दिखाई दे रहे हैं। कुछ लोग दूसरो को क्यू-जंपिंग कराके उनका शीघ्र टिकट कटाकर ही नता बन गए हैं और इस तरह उन्होंने बडा नाम कमा लिया है। अन्य लोग उनकी यशगाथाएँ लिख रहे हैं, उन पर फिल्मे बना रहे हैं और उन्हें अपने दलो में शामिल करने की होड में हैं।

परंतु ऐसे व्यक्तियों के कार्यो की सर्वत्र प्रशंसा की जा रही है, जो अन्यो की टिकट-विंडो की ओर बढ़ने की गति कम करने का प्रयत्न कर रहे हैं। कभी-कभी तो ये लोग उस व्यक्ति को टिकट-विंडो के पास से वापस खींच लेते हैं, जो टिकट कटाने-हेतु अपना हाथ बढ़ा चुका होता है। किसी साधारण क्यू के नियमों के विपरीत ऐसा कार्य करनेवालों को बडा धन व सम्मान दिया जा रहा है।

मैं सोच रहा हूँ कि केसा अनोखा है यह क्यू कि इसमे लग सभी लोग यह भ्रम स्वयं पालकर दिन-प्रतिदिन के अपने कार्य कर रहे हैं, जैसे वे कभी टिकट-विंडो तक पहुँचेंगे ही नहीं, जबकि सभी को टिकट मिलना इस क्यू की अनिवार्यता है। मैं फुरसत में इस अनोखे क्यू क अनोखे दृश्यों का आनंद ले रहा हूँ, क्योंकि क्यू-जपिंग की न तो मुझे आदत है और न चाह।



पौराणिक नाम

यदि आप किसी अनाम शिशु क माता या पिता बनने वाले हैं, तो कृपया उसका पौराणिक नाम रखने से पूर्व मुझ भुक्तभोगी का यह लख अवश्य पढ़ ले।

हमारे (मेरे व मेरी धर्मपत्नी के) दो पुत्र हुए और हमने आधुनिक दिखने के प्रयत्न में उनके नाम राजर्षि व देवर्षि रख दिए थे, यद्यपि प्यार से हम उन्हें बबबल और दीपू बुलाते थे। इन नामों का जिसने सुना उम्मी ने कहा कि नाम बड़े छोटकर कर रखे हैं, परतु शायद ही किसी ने उनको इन नामों से बुलाने का प्रयत्न किया हो। सभी ने घरेलू नामों से ही बुलाया। सीधी-सी बात थी कि जिह्वा को अनावश्यक कष्ट क्यों दिया जावे।

फिर राजर्षि को जब सेंट पौल स्कूल में भर्ती कराने गया तो उसका नाम राजेश लिखकर आया। अतः भर्ती कराने हेतु प्रिंसिपल आफिस के जो तीन चक्कर मैं पहले लगा आया था, उनमें नाम के शुद्धीकरण-हेतु एक और जोड़ना पड़ा। कुछ दिन बाद राजर्षि स्कूल में आकर मुझमें बोला, 'पापा, मिस मुझे राजश्री क्यों कहती हैं?' मैं समझ गया कि फिर कहीं कुछ घपला है और मिस को जाकर समझा आया कि नाम राजश्री नहीं राजर्षि है। मिस एक अँग्रेजीदाँ क्रिश्चियन थी, अतः उन्होंने 'मैरी, थॅक्स' आदि कहते हुए सही नाम से पुकारने का वादा किया, परतु जब राजर्षि की मार्क्स-शीट आई तो उम्मे नाम अँग्रेजी में राजर्षि लिखा हुआ था। मुसीबत उसी स्कूल में समाप्त नहीं हुई। चूँकि मैं चक्रवर्तिनी

की तरह स्थानांतरित किए जानेवाला पुलिसकर्मी हूँ, अतः राजर्षि को बार-बार नए-नए स्कूलों में भर्ती कराना पड़ता रहा, और हर बार उसका नाम सही कराने की समस्या आती रही। और ऐसा कभी नहीं हो सका कि उसके स्कूल के सभी अध्यापक उसे सही नाम से पुकार सकें हों—किसी के लिए वह राजेश रहा, तो किसी के लिए राजश्री, तो किसी अन्य के लिए राजरिशी और किसी के लिए ठेठ राजसी।

जब उसने 12वीं कक्षा पास कर ली और लखनऊ विश्वविद्यालय में प्रवेश-परीक्षा का परिणाम देखने गया, तो चयनित विद्यार्थियों की सूची देखने-हेतु तीन चार लड़के वहाँ पहले से खड़े हुए थे। उनमें से एक लड़का प्रारंभ से नाम पढ़ रहा था। जब मेरे बेटे का नाम आया तो गद्गद् होकर बोला, 'चलो एक लड़की हमारे क्लास में आई।'

मेरे दूसरे बेटे देवर्षि के साथ भी कम हादसे नहीं हुए हैं। जब वह छठे क्लास में एक नए क्रिश्चियन स्कूल में प्रवेश लेने-हेतु गया, तो उसकी एंग्लो इंडियन मिस ने उसका नाम देवरजी लिखा दिया। मैं बड़ी कठिनाई से उन्हें समझा पाया कि मेरा बड़ा बेटा तो अभी अनब्याहा है फिर छोटा उनका देवरजी कैसे हो गया। देवर्षि के बड़े होने पर मैंने उसके लिए एक मोटर साइकिल खरीद दी। मोटरसाइकिल के बीमे की पॉलिसी पर उसका नाम देवेश चढ़कर आ गया और जब मोटरसाइकिल का एक्सीडेंट हुआ तो मुझे बीमा वालों को यह समझाने में नाकों चने चबाने पड़े कि बीमा रशि का हकदार मेरा बेटा देवर्षि है।

मैं स्वयं भी अपने नाम के उच्चारण की क्लिष्टताजनित हास्यास्पद स्थिति का शिकार हो चुका हूँ। वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, लखनऊ के पद पर नियुक्ति के दौरान मुझे प्रायः शिया एवं सुन्नी मुसलमानों के लीडरान से वार्ता करनी पड़ती थी और प्रायः वे मुझे आदर से 'दुर्वेदी साहब' कहकर पुकारते थे।



दाढ़ी वृत्तांत

दाढ़ी पर शोध करना न तो मेरा कोई शौक है और न इससे मुझे कोई डिग्री हासिल हो सकती है, पर एक दिन मजबूरी की अवस्था में मुझे दाढ़ियों का अध्ययन करना पड़ा, जिसका परिणाम यह शोध-पत्र निकला। हुआ यूँ कि जनपद बलरामपुर के गैसड़ी कस्बे में मेरी कार खराब हो गई और ठीक होने का नाम ही नहीं ले रही थी। या तो मेरे साथ के वर्दीधारी पुलिसमैन के कारण या गाड़ी में लगे झंडे के कारण काफी वयस्क पुरुष व बच्चे मेरी गाड़ी के आस-पास मँडराने लगे। पुलिस में होने के नाते मैं इस दृश्य का आदी हो चुका हूँ और मैं उन लोगों की ओर विशेष ध्यान भी नहीं देता, यदि साथ में बैठी मेरी पत्नी ने उन लोगों में नयापन न देखा होता कि वे अधिकतर दाढ़ी रखे हुए थे। चूँकि हम दोनों काफी बोर हो चुके थे, अतः उनकी भाँति-भाँति की दाढ़ियों को गौर से देखने लगे। तब हम लोगों ने पाया कि दाढ़ी सचमुच एक अवलोकनीय, निरीक्षणिय, परीक्षणिय, खींचनीय एवं हँसनीय वस्तु है।

सर्वप्रथम जो सज्जन हमारी निगाह में पड़े, उनकी दाढ़ी दाढ़ी नहीं थी वरन् तुक्की थी। यदि आपको कभी खसी बकरों के निरीक्षण का सौभाग्य प्राप्त हुआ हो तो आपने तुक्की देखी होगी- यह पतले लंबांतरे चेहरे पर शांभायमान होती है, जिसमें ठुड्डी पर थोड़े से लंबे-लंबे बाल होते हैं तथा कलम के स्थान पर थोड़े से बाल होते हैं, शेष चेहरे पर बाल नगण्य होते हैं। तुक्की धारकों के पान की पीक लंब (वर्टीकल) दिशा

म नीचे को बहती है। तुक्की धारक की मूँछ में भी कम बाल होते हैं। तभी एक सज्जन आकर ड्राइवर से बोले, 'क्या कोई मिस्तरी चाहिए?' और हमारा ध्यान उनकी सदाबहार वन जैसी लहलहाती दाढ़ी की ओर गया। मेहँदी लगाकर दाढ़ी को बड़े जतन से लाल किया गया था परंतु छोटे-बड़े राजनीतिक दलों की तरह दाढ़ी के छोटे-बड़े गुच्छे अलग-अलग दिशा में झाँक रहे थे, जैसे चुनाव के दौरान आपसी बोलचाल भी बंद हो गई हो। इन सज्जन ने मूँछें साफ़ कर रखी थीं और होठों के कोनों पर दाढ़ी को उस्तरे से ऐसे साफ़ किया था जैसे बाल बनाते समय नाई उस्तरे से कलम बनाता है। पूरा चेहरा ऐसा लग रहा था जैसे सूखे नारियल के फल की जटाएँ उघाड़कर कोई लटका दे और बीच में आँख, नाक, मुँह बना दे। इसी बीच वहाँ एक बुल्गानिन के अनुयायी प्रकट हो गए। केवल टुड्डी पर करीने से कटी छोटी-सी दाढ़ी और गालों पर 'क्लीन-शेव'। जब मैंने अपनी पत्नी से बुल्गानिन के दर्शन करने को कहा, तो वे बोली, 'आपका अनुमान गलत है। चूँकि आप पुराने ज़माने के हैं, इसलिए आपको बुल्गानिन की याद आयी है, जबकि वास्तव में यह सज्जन निवर्तमान भारतीय प्रधानमंत्री के चेले हैं।' इसी बीच झुर्रीदार चेहरे वाले एक सज्जन एक नन्हे बच्चे का गोद में लिए वहाँ प्रकट हुए। उनकी दाढ़ी इतनी सफ़ेद चमकदार थी जैसे धुन्ने ने नई कपास धुनकर बनाई हो। उनकी दाढ़ी को हम लोग ध्यान से देखने लगे कि वह गोद में लिए बच्चे के गाल से छू गई और बच्चे ने प्रेम से हाथ बढाकर दाढ़ी को कसकर पकड़ लिया। फिर वह जितना छुड़ाने का यत्न करें, नन्हे हाथ की पकड़ उतनी मजबूत होती रही। पास में खड़े पुलिस के गनर ने जब उस बच्चे की मुट्ठी जोर लगाकर खोली, तब दाढ़ी इस अचानक आए त्रास से मुक्त हो पाई।

हम स्थानीय दाढ़ियों में कुछ का ही अध्ययन कर पाए थे कि हमारा ध्यान पास से गुजरती एक मारुति पर चला गया, जिसमें पिछली सीट पर एक गेरुआ वस्त्रधारी सज्जन बैठे हुए थे। वाह! क्या शानदार दाढ़ी थी उनकी! जैसे वह सज्जन खाए-पिए घर के लग रहे थे वैसी ही घनी फहगती दाढ़ी थी उनकी। और मूँछें भी ख़ूब सेहतमंद थी। देखकर

तबियत प्रसन्न हो गई और दिल को तसल्ली हुई।

तभी एक पगड़ीधारी सज्जन आकर कार के खुले इंजन पर झुक गए। उनकी दाढ़ी को खूब ग्रीज लगाकर चिपकाया गया था और मूँछों को भी ग्रीज से नुकीली तलवार की तरह उमेठा हुआ था। हम दोनों यह दाढ़ी देखकर 'इम्प्रेस' हो गए कि इसी बीच उनकी पगड़ी सर से गिर गई और पूरी तरह गजा सर चमकने लगा। पगड़ी हाथ में उठाकर वह सज्जन जो खड़े हुए तो खल्लाट खोपड़ी के नीचे तलवार-कट मूँछें एव चिकनी-चुपड़ी दाढ़ी का दृश्य बड़ा अनोखा लग रहा था। हमें हँसी छूट रही थी परंतु उन सज्जन ने बिना झेंपे पगड़ी कार की छत पर रख दी और फिर इंजन पर झुककर दो-चार हाथ लगाए और एक-आध जगह ग्रीज लगाई कि गाड़ी फर्र से स्टार्ट हो गई। मैंने उन सज्जन को धन्यवाद दिया और चल दिया।

रास्ते में मेरी धर्मपत्नी बोली कि जिस तरह उन सज्जन की दाढ़ी को ग्रीज की आवश्यकता थी, उसी तरह इस गाड़ी को भी ग्रीज की आवश्यकता थी और संभवतः वह सज्जन ग्रीज लगाने में उस्ताद थे।



गैस

रसायनविज्ञान की प्रारंभिक कक्षाओं में गैस के भौतिक एवं रासायनिक गुणों को अध्यापक द्वारा बार-बार समझाने के बावजूद मैं केवल इतना समझ सका था कि गैस कोई ऐसी वस्तु होती है, जो स्वतः उडायमान हो जैसे हवा। सच तो है कि गैस की बात आते ही हवा का ध्यान स्वतः आ जाता था। परंतु हाईस्कूल में जब प्रयोगशाला में घुसने का मौका मिला तो सबसे पहले अमोनिया गैस की तेज महक सूँघकर पता चला कि गैस और चीज भी हो सकती है। फिर तो विभिन्न प्रकार के तेजाबों की गैस, क्षारों की गैस एवं सबसे अधिक अमोनिया गैस प्रतिदिन सूँघना एवं उसकी महक सहन करना अपना रोज-रोज का भाग्य ही बन गया। गैस की तेजी तब और अधिक समझ में आई जब एक दिन एक छात्र द्वारा कुछ रासायनिक पदार्थ एक मेज़ पर बिखर गए और आपस में मिल गए। ऐसा दमघोंटू वातावरण पैदा हुआ कि सभी छात्र आँखें मलते हुए प्रयोगशाला से भाग खड़े हुए।

कुछ वर्ष बाद पढ़ने के लिए अमरीका जाने का मौका मिला। मेरे एक मित्र एयरपोर्ट पर मुझे लेने आए थे। उस दिन जे.एफ.केनेडी एयरपोर्ट पर बड़ी खुशनुमा सुबह थी। मित्र की कार में बैठकर हम न्यूयार्क से कुछ ही दूर निकल पाए हाँगे कि उन्होंने कहा, 'पार्टनर, गैस ले लें, तब चलते हैं।' मुझे आश्चर्य हुआ कि रास्ते में गैस का क्या करेंगे, परंतु तब तक मित्र ने कार एक पेट्रोल टंकी की बगल में खड़ी कर दी और बाकायदा हिंदुस्तानी ढंग का पेट्रोल टंकी में भरने लगे। कार के पुनः चल देने पर मैंने कहा कि तुम कौन-सी गैस की बात कर रहे थे तो वह

मुस्कराकर बोले, 'यार, यहाँ इसी को गैस कहते हैं और पेट्रोल पंप को गैस स्टेशन कहत है।' तब मेरी समझ में आया कि गैस केवल वह वस्तु नहीं होती, जो स्वतः उड़ायमान हो। कम-से-कम अमरीका में वह स्वतः बहायमान भी हो सकती है।

कुछ साल बाद अमरीका से जब भारत लौटा तो देखा कि हिंदुस्तानी घरों में चूल्हे की जगह गैस का प्रचलन हो गया था। इसका नाम था लिक्विड-पेट्रोलियम गैस- यानी द्रव भी और गैस भी। तब मेरी समझ में आया कि अमरीका में पेट्रोल को गैस कहने में कोई अजूबा नहीं है।

इस बीच हिंदुस्तान के लोग एक अन्य प्रकार की गैस से भी परिचित हो चुके थे—पेट की गैस। जहाँ देखो वहीं विज्ञापन देखने को मिलते थे—गैसांतक बटी या गैस-हरन, गैसविनाशक चूर्ण, अथवा गैसमुक्ति की गोलियाँ। अस्पताल में यदि कोई मरीज सरदर्द का इलाज कराने जाए और डाक्टर गैस की दवा दे, तो अब लोगो को आश्चर्य नहीं होता था। गैस के विषय में जानकारी के साथ भारतीयों के गैस-उत्पादन की क्षमता भी दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ रही थी। मेरी धर्मपत्नी तो इस समस्या का लाभप्रद हल यह बताती थीं कि भारत के लोगों के पेट से खाली गैस सिलिंडर जोड़ दिए जाएँ। इससे उन्हें ता गैस से मुक्ति मिलती ही रहेगी, साथ ही अमीर-गरीब सबका चूल्हा बिना कुछ व्यय किए जलता रहेगा। जब मैं नान-कर्वेशनल इनर्जी डेवलपमेंट ऐजेंसी का डाइरेक्टर नियुक्त हुआ तो मेरी पत्नी ने मुझे इस नान-कर्वेशनल सोर्स आफ इनर्जी पर अधिक जोर देने का सुझाव भी दिया परंतु मैं केवल अपने छात्र-जीवन के अनुभवों के कारण इस पर अमल नहीं कर पाया हूँ, क्योंकि मैं जानता हूँ कि प्रयोगशाला की गैसों की महक तो किमी तरह बरदाश्त भी की जा सकती है परंतु मानव तो ऐसी-ऐसी ताजातरीन खुशबुओं वाली गैस पैदा करता है कि उसमें पका खाना मेरे गाँव का कुत्ता भी खाने का साहस नहीं कर सकता है। हाँ, मैंने पेरिस वालों को अवश्य लिख भेजा है कि यदि नवीन इत्रों के फार्मूला की उनके पास कमी पड़ गई हो, तो इस गैस पर एक्मपेरीमेंट करके देख ले। उनकी प्रथम प्रतिक्रिया अत्यंत उत्साहवर्धक है।



प्यासे हैं पेट्रोल पीजिए

डिट्रॉइट से शिकागो जाते हुए एक जगह हैमंड एंड गैरी पड़ती है। कार पर चलते-चलते हम सब लोग थक रहे थे। अतः हैमंड एंड गैरी पहुँचने के कुछ पहले एक जगह 'मैक्डोनाल्ड' (फास्ट-फूड रेस्टॉ) का साइन देखकर रुक गए। रेस्ट रूम (बाथरूम या ट्वाइलेट का अमरीकन पर्यायवाची शब्द) जाने के बाद पीने के लिए मैं कुछ देखने लगा, तो पानी (मिनरल वाटर) की एक लीटर की बोतल का मूल्य 1 डालर 9 सेंट (लगभग 50 रुपया) देखकर बहुत अधिक लगा। उसी के बगल में पेप्सी के दो लीटर का मूल्य 79 सेंट (लगभग 33 रुपए) लिखा देखकर आश्चर्य हुआ, क्योंकि एक लीटर मिनरल वाटर के मूल्य में पौने तीन लीटर पेप्सी मिल रही थी। इस पर विचार करते हुए बाहर गैस-स्टेशन (पैट्रोल पंप) पर नज़र पड़ गई। बड़े से खंभे में अन्लेडेड पैट्रोल का मूल्य 1 डालर 9 सेंट में एक गैलन (पौने चार लीटर) लिखा दिखाई दिया। यानी एक लीटर मिनरल वाटर के मूल्य में पौने चार लीटर अन्लेडेड पैट्रोल मिल रहा था। मैंने 'टका सेर भाजी और टका सेर खाजा' वाली कहावत सुनी थी परंतु 'टका सेर भाजी और टका सेर खाजा' बिकता हुआ आज पहली बार देख रहा था।

तभी मेरी निगाह लेडेड पैट्रोल के भाव पर पड़ गई जो 1 डालर 18 सेंट का एक गैलन था, यानी साफ़ किया हुआ अच्छा पैट्रोल सस्ता था और प्रदूषण फैलाने वाला पैट्रोल महँगा था। मुझे इस पहली का कारण समझ में नहीं आ रहा था। अतः मैंने मैक्डोनाल्ड के एक कर्मचारी से

इसका कारण पूछ लिया वह बोला, श्रीमान साधारण सी बात है अमेरिकन प्रशासन चाहता है कि जनता अन्लेडेड पेट्रोल का प्रयोग अधिक करे, जिससे प्रदूषण कम हो, इसलिए इसे सस्ता कर रखा है। इस कारण यहाँ के लोगों ने लेडेड पेट्रोल की कारें खरीदना लगभग बंद कर दिया है।' मुझे उसकी बात और अमरीकन प्रशासन के तर्क में बड़ा वजन लगा और मैं सोचने लगा कि जनता को उचित रास्ते पर लाने का यह कैसा युक्तिसंगत एवं प्रभावशाली तरीका है।

मैं आगे पानी व पेट्रोल के भाव के आश्चर्यजनक अंतर का कारण पूछकर अपना अज्ञान प्रदर्शित नहीं करना चाहता था, अतः यह मानकर संतोष करना पड़ा कि संभवतः अमरीकन प्रशासन जनता को पानी की जगह पेट्रोल पीने को प्रेरित करना चाहता होगा।



पदच्युत इंद्र

चक्रवर्ती राजा से उसके एकछत्र राज्य को अचानक छीन लिया जाए और वह इतना निरीह हां कि उसे यह भी न पता चल सके कि ऐसा उसके साथ क्यों किया जा रहा है तो उसकी जो दशा होगी, उससे कई गुनी बड़ी मानसिक त्रासदी थी उसकी, क्योंकि उसे समझाया जा रहा था, 'तुम्हें तुम्हारे एकछत्र राज्य से वंचित करने वाले से घृणा करने के अधिकार से भी वंचित किया जाता है और उसे प्यार करना तुम्हारा कर्तव्य है।'

वह 2 वर्ष का बालक था, परंतु उसमें अन्य बालकों की अपेक्षा एक विशेषता थी। उसकी माँ अपने माता-पिता की सबसे बड़ी पुत्री थी और उसके पिता अपने माता-पिता के सबसे बड़े पुत्र थे- और वह अपने घर की एकमात्र संतान था। इसप्रकार वह अपने, अपने नाना व अपने बाबा के घरों में एकमात्र बालक था और माता-पिता, बाबा-दादी व नाना-नानी की आँख का तारा था। उसकी माँ उस पर जान छिड़कती थी और उसे प्यार में कहती भी थी कि वह मम्मा की जान है। वह कुशाग्रबुद्धि बालक था परंतु उसमें अपनी आयु से अधिक बचपना सदैव रहा था- जैसे ढाई-तीन साल की आयु तक उसने ठीक से बोलना आरंभ नहीं किया था और उसका साल-भर का हांकर भी मम्मा-पापा के अतिरिक्त कुछ न बोलना उसके माता-पिता, बाबा-दादी के लिए चिंता का विषय भी रहा था। अब चार वर्ष की आयु में वह बोलने तो लगा था परंतु बचकाने ढंग से। उसका यह बचपना उसे और अधिक अलकरण

की वस्तु एव प्यार का पात्र बनाए हुए था।

दूसरे बच्चे क जन्म की संभावना पर उसके माता-पिता को बड़ी उलझन अनुभव हुई थी कि उसे कैसे बताया जाए। खूद सोच-ममझकर उसकी माँ ने उससे कहा, 'बेटा, तुम्हारे साथ खेलने को कोई नहीं है तुम्हें अकेलापन लगता होगा। इसलिए अब तुम्हारे साथ खेलने को एक बहिन आएगी या भाई आएगा।'

'कहाँ से आएगी' उसने पूछा। उमकें उत्साह में एक शंका भी छिपी थी।

'मम्मा के पेट से।' माँ ने मच बोलना उचित ममझा।

वह कुछ देर सोचता रहा, फिर बोला, 'क्या मेरे दोस्त प्रांजल की बहिन जैसी होगी।' उसने अपने दोस्त की छोटी-सी बहिन का देखा था और उसे वह अच्छी लगी थी।

'हाँ, लेकिन छोटा-मा भाई भी हो सकता है।'

'मम्मा अगर भाई हो तो उस तुम पेट में ही रखे रहना।' उसने अधिकार के साथ कहा। उसकी माँ हँस दी।

वह अपनी माँ का अत्यंत प्यार करता था और उस पर अपना पूर्ण अधिकार समझता था। उसकी माँ को देखने जब डाक्टरनी आई थी और उन्होंने परीक्षण-हेतु कमर बंद कर लिया था, तो उसने इस आशका से कि वह माँ को इंजेक्शन न लगा दें, दरवाज़ा पीट-पीटकर घर सिर पर उठा लिया था और डाक्टरनी के निकलने पर उन पर झपट पड़ा था।

जब नर्सिंग होम में उसके छोटे भाई का जन्म हुआ तो उसे इसकी सूचना दादी ने दी। इस सूचना पर वह कुछ शांत-सा हो गया था परंतु कोई स्पष्ट प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की थी, परंतु तीन दिन बाद जब उसने नर्सिंग होम में उस छोटे-से बच्चे को अपनी मम्मा के बगल में लेटे हुए देखा, तो उस समय उमका चेहरा पदच्युत इंद्र के समान लग रहा था। वह न तो उस बच्चे को देख रहा था और न किसी और को। बस अपने दुख, क्रोध व आँसुओं को छिपाने हेतु अपना चेहरा छिपा रहा था।

माँ के नर्सिंग होम से घर आ जाने पर उसने दूसरे दिन सुबह स्कूल जाने से मना कर दिया। जब माँ ने ममझाना चाहा तो बोला, 'मम्मा तुम

मुझे प्यार नहीं करती हो।' उसके हिसाब स बात सही थी, क्योंकि चाहत हुए भी माँ उसे हाथ से खाना खिलाने, लोरी सुनाकर सुलाने एव अपने हाथ से स्कूल जाने को तैयार कराने का काम नहीं कर पाई थीं। दूसरे दिन यह लालच देकर ही उसे स्कूल ले जाया जा सका था कि उसके हाथ से उसके साथियों को लड्डू बँटवाने हैं।

एक दिन जब वह पलंग पर बैठा था तो उसकी माँ ने उसके छोटे भाई को उसकी गोद में रख दिया था। वह उसे ध्यान से देखने लगा था लेकिन जब बाबा ने कहा, 'कैमरे की तरफ देखो, दोनों की फोटो ले ले,' तो उसने उस छः दिन के बच्चे को पलंग पर लुढ़का दिया था। एक दिन उसने अपने क्राध को दबा न पाने पर छोटे भाई की उँगली खीच दी थी। माँ जब उसे इसके लिए समझा रही थी तो बोल पडा, 'मम्मा तुम इसे फिर अपने पेट में रख लो।' इसी प्रकार एक दिन उसके छोटे भाई की फकड में उसकी माँ की माडी का पल्लू आ गया था और वह उसे खीचने लगा था ता उसने क्रोध में छोटे भाई का हाथ झटककर कहा, 'मम्मा, यह तुम्हें क्यों प्यार करता है?' इस पर माँ ने क्षोभ से भरकर कहा था, 'अच्छा, तो अब हम इसे बाबा-दादी के पास ही छोड़ देंगे और हम लोग पापा के साथ चलें चलेंगे।' इस पर एक अनोखी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए वह माँ से क्रोधित होकर बोला था, 'माँ, तुम कैसी बात करती हो?' उसकी माँ नहीं समझ सकी थी कि वह क्या कहना चाह रहा था कि क्या वह संभव है अथवा क्या ऐसा सोचना उचित है!

परतु एक दिन जब उसकी माँ किचन में व्यस्त थी, तभी उसके तीन साथी उसके घर पर आ गए थे और उसके छोटे भाई के पलंग पर बैठकर उछलकूद करने लगे थे। तब उसने घबराकर छोटे भाई के आस-पास अपने हाथ रखकर उन पर चिल्लाना शुरू किया, 'हटो-हटो, दूर हटो। मेरे छोटे भाई का चोट लग जाएगी।' जब उन बच्चों ने ध्यान नहीं दिया तो वह फिर चिल्लाया, 'माँ-माँ, हटाओ इनको, मेरे छोटे भाई को बचाओ।'

माँ यह दृश्य देखकर अवाक् एव आह्लादित हो रही थी।



दो हजार पचीसी

‘जल्दी से एक बी-निगेटिव जवान गधे का दिल देना।’ एक चमचे ने किसान से कहा।

चौकिए नहीं, ‘यह कोई गधापचीसी नहीं है। हाँ, दो हजार पचीसी अवश्य कही जा सकती है। आज एक अप्रैल सन् दो हजार पचीस है और आज के पाँच वर्ष पूर्व वैज्ञानिकों ने जेनेटिक इंजीनियरिंग के माध्यम से यह खोज कर ली थी कि यदि भारतीय गधे के शरीर के जीन्स में मानवीय जीन्स को प्रवेश करा दिया जाए, तो उसकी सतानों के अवयवों को मानव-शरीर स्वीकार कर सकता है और उन्हें मानव-शरीर में प्रत्यारोपण-हेतु प्रयोग किया जा सकता है। फिर क्या था! यह खोज करने वाले अमरीकी वैज्ञानिकों का सारा ध्यान भारत के गधों पर केंद्रित हो गया और गधों की पौ-बारह हो गई। वाशिंग मशीनों के भारतीय घरों में प्रवेश के बाद धोबी का गधा न घर का रह गया था और न घाट का और उसकी छीछालेदर हो रही थी। परंतु जैसी कि कहावत है ‘हर कुने के दिन बहुरते है’ उसी तरह भारत के गधों के दिन भी बहुर गए। खाद्य विशेषज्ञ गधों के लिए उपयोगी खुराक की खोज में लग गए, चिकित्सक उनको स्वस्थ रखने हेतु जुटे रहने लगे और डंकी-डाक्टर्स कहे जाने में अपनी शान समझने लगे, यौन-चिकित्सक उनकी प्रजनन-शक्ति बढ़ाने (जो प्रत्यक्षतः कभी कम नहीं रही थी) हेतु शोधपत्र लिखने लगे और किसानों ने खेतों में गहूँ मक्का बोन के बजाय उन्हें डंकी फार्म बना

निकला, क्योंकि दुनिया-भर से इनके अवयवों की माँग बढ़ती जा रही थी। भारत ने भारतीय गधों के देश के बाहर जाने पर रोक लगा दी जिसे अन्य देश अपने यहाँ ऐसे गधे न पैदा कर ले। भारत के जाने-माने महानुभावों को इलाज-हेतु अब ह्यूस्टन या बोस्टन जाने की आवश्यकता नहीं रह गई थी, क्योंकि जहाँ उनका अग अधिक उपयोग या दुरुपयोग के कारण खराब हुआ, किसी गधा या गधी के अंग से प्रत्यारोपण कर दिया जाता। तभी एक दिन कृषि विभाग के एक महानुभाव के दिल में दर्द आरम्भ हुआ और डाक्टरों ने परीक्षण कर अविलंब दिल के प्रत्यारोपण का सुझाव दिया। उसी पर अमल करने हेतु उनका खास चमचा पास के किसान से एक जवान दिल खरीदने हेतु हाँफता हुआ आया था।

किसान ने कहा, 'दस हजार रुपए का मिलेगा'

चमचा गुर्गुराकर बोला, 'जानता नहीं कि यह दिल किसके लिए जा रहा है।' महानुभाव 'डंकी फार्मिंग' के लिए मिलने वाली 'मब्सिडी' (अनुदान) बढ़ कर देगे ता दाल-आटा का भाव याद आ जाएगा।'

'किसान को मन-ही-मन बहुत क्रोध आया, पर बिना बोले वह बाड़े में घुसकर एक खास गधे को बाहर ले आया और उसका दिल निकालकर चमचे द्वारा लाए गए फ्लास्क में रख दिया। चमचा धन्यवाद तक कहे बिना अकड़ता हुआ चला गया।

डाक्टरों ने बड़ी दक्षता से महानुभाव के दिल का प्रत्यारोपण कर दिया और उनका दिल जवान हो गया। उनमें एक तरह की जवानी का जोश आ गया। उनकी क्षमता देखकर उनके जाननेवाले लोग आश्चर्यचकित हो रहे थे। इस प्रकार एक वर्ष बीत गया। परंतु एक अप्रैल सन दो हजार छब्बीस की रात्रि में महानुभाव की सुरक्षा गार्ड का सतरी हैरान हो रहा था कि उनके कमरे से प्रतिरात्रि की भाँति खर्राटों की आवाज के बजाय नए प्रकार की ध्वनियाँ क्यों प्रसारित हो रही हैं? कभी लगता कि कोई ढेचू-ढेचू कर रहा है और कभी लगता कि कोई किसी के पीछे कमरे में दौड़ रहा है। सतरी बिचारा बड़े लोगों के घरों से तरह-तरह की आवाजे पहले भी सुन चुका था, इसलिए उसने उस दिन चुप रहना ही बेहतर समझा। परंतु जब उसे आगे भी रात में इस तरह की आवाजे सुनाई दी,

ता उसने डरते-डरते चुपचाप यह बात महानुभाव के प्रायवेट सेक्रेटरी को बताई और कहा, 'लगता है कि महानुभाव को अच्छी नींद नहीं आती है। शायद उन्हें डाक्टरों की आवश्यकता है।' प्रायवेट सेक्रेटरी ने संतरी को झिडक दिया और यह बात किसी अन्य से न कहने का हुक्म दिया।

धीरे-धीरे प्रायवेट सेक्रेटरी को भी कुछ अनोखी बातें दिखने लगीं। क्योंकि प्रायः महानुभाव के पास फ़ाइल भेजी जाती आलू या प्याज की फसल बढ़ाने की और आदेश आता गधइयों के भोजन में सुधार का। तभी एक दिन वही किसान, जिसने महानुभाव को दिल भेजा था, उनसे अपने डकी-फार्म के विस्तार के अवसर पर मुख्य अतिथि के रूप में पधारने का निमंत्रण लेकर आया। महानुभाव ने सहर्ष एवं सौत्साह निमंत्रण स्वीकार कर लिया। महानुभाव ने मंच पर बड़ा जोरदार भाषण दिया, 'मुझे इस डकी फार्म के विस्तार के अवसर पर यहाँ आकर हार्दिक प्रसन्नता हा रही है। आज हमारे प्रदेश में अधिक-से-अधिक गधे और गधइयों की आवश्यकता है। विशेषतः गधइयों की, क्योंकि इनकी सख्या जितनी अधिक होगी उतने ही अधिक गधे पैदा होंगे। इनसे प्रदेशवासियों की आय, स्वास्थ्य एवं बुद्धि में सुधार होगा। इनसे हमारा निर्यात बढ़ेगा और देश-देश में हमारा नाम होगा कि हमारे यहाँ इतने अधिक गधे हैं।'

'तभी उस मेज़बान किसान ने, जिसने महानुभाव को खास' गध का दिल दिया, बड़ी नम्रता से आगे बढ़कर निवेदन किया, श्रीमान मैंने फार्म के विस्तार-हेतु गधों के सबसे बड़े प्रदेश से एक विशेष नस्ल की गधइया आज ही मँगाई है, यदि अनुमति दें तो प्रस्तुत करूँ।

यह सुनकर महानुभाव के चहरे पर अचानक चमक आ गई और तपाक से बोले, 'हाँ, अवश्य लाओ।'

किमान ने एक नवयुवती गधइया लाकर मंच पर खड़ी कर दी और महानुभाव ललचाई नज़रों से उसके अंग-प्रत्यंग का निरीक्षण करने लगा। तभी वह गधइया महानुभाव के नेत्रों का भाव भाँपकर मंच से भागी और महानुभाव ढेचू-ढेचू करते हुए उसके पीछे भागे। उनके चमचे उन्हें बड़ी कठिनाई से पकड़ पाए और सीधे अस्पताल ले आए, जहाँ जनरल फिजीशियन ने उन्हें शारीरिक रूप से पूर्णतः स्वस्थ घोषित करते हुए

मनोचिकित्सक को दिखाने की राय दी। मनोचिकित्सक ने रोग का मूलकारण ज्ञात कर महानुभाव के प्रायवेट मेक्रेटरी को राय दी है कि उनके कमरे में रोज़ रात्रि एक गधडया बाँधी जाए।

इस घटना का प्रदेश के समाचारपत्रों में भरपूर प्रचार हुआ है और प्रदेश की जनता ने गधो के इतने प्रिय पात्र को अगले चुनाव में प्रदेश का मुखिया बनाने का निश्चय किया है।



भाड़े के पति (रेंट ए हस्बैंड)

पतियो! सावधान। अब तुम घर की अनावश्यक वस्तुओं में एक बनते जा रहे हो। भला जब पति भाड़े पर उतने समय के लिए मिल रहे हो, जितने के लिए उनकी आवश्यकता हो, तो चौबीसों घंटे कोई पत्नी क्या घर में एक ही पति की शक्ल देखना बरदाश्त करेगी?

वात यू है कि इंग्लैंड के मार्क हौकिन्स नामक उद्यमी व्यक्ति ने मार्केट रिसर्च (शोध) कर जब यह पाया कि आदर्श पति की इच्छा रखने वाली स्त्रियों के पैमाने पर खरे उतरने वाले पति कम ही हैं, तब उन्होने 'रेंट ए हस्बैंड' (भाड़े का पति) नामक कंपनी इंग्लैंड में खोल दी है। वेसे उन्हें यह विचार अमरीका यात्रा के दौरान मिला था, क्योंकि वहाँ 17 नगरों में पहले से 'भाड़े के पति' मिलने के केंद्र उपलब्ध हैं।

'रेंट ए हस्बैंड' एक ऐसा अस्थायी पति होता है, जो कंपनी को फोन कर देने मात्र पर उपस्थित हो जाता है और घर के वे सभी कार्य खुशी-खुशी संपन्न करता है, जो वास्तविक पति महोदय थके हुए अथवा आलसी होने के कारण नहीं करना चाहते हैं। उदाहरणतः सुबह साढ़े सात बजे चाय बनाकर बिस्तर में ही दे देना, खरीदारी में सलाह देना और मुस्कराते हुए खरीदी वस्तुओं को उठाकर कार तक ले आना, और जब गृहिणी किसी काकटेल पार्टी में जा रही हो तो बच्चों को खिला-पिलाकर सुला देना और बिस्तर तैयार कर प्रतीक्षा करना। इन भाड़े के पतियों को जितने समय के लिए चाहो, बुलाया जा सकता है। अलबत्ता उन्हें बीस पाउंड (1300 रुपए) प्रति घंटा की दर से भुगतान करना होता है।

ब्रिटेन में भाड़े के पतियों की माँग बढ़ती जा रही है, क्योंकि अकेली माताओं एवं कुँआरी कामकाजी औरतों की बढ़ती संख्या के अलावा ऐसे जोड़ों (ब्याहे अथवा केवल साथ रहनेवाले) की संख्या भी बढ़ती जा रही है, जिनमें पुरुष देर तक काम पर रहने अथवा स्वभाववश आलस्य के कारण घर के कामकाज में हाथ नहीं बँटाता है और पत्नी को असंतोष का कारण देता है।

पूछताछ करने पर भाड़े के पति की सेवाओं से ग्राहक महिलाएँ प्रायः सतुष्ट पाई गई हैं और उन्होंने उनकी प्रशंसा की है। अमरीका में चौदह सौ पुरुषों की 'भाड़े का पति' बनने की अर्जियाँ लंबित पड़ी हैं, जिन पर कंपनी वाले विचार कर रहे हैं। पोर्टलैंड में के जिम हिवटमोर का, जो 'भाड़े का पति' है, कहना है कि वह घर के वे सभी कार्य करते हैं, जो एक पत्नी के सहयोगी स्मार्ट पति को करने चाहिए। जिम अपना पूरा जीवन 'भाड़े का पति' ही बने रहने का इरादा रखते हैं।

जिम हिवटमोर के अनुसार 'भाड़े का पति' सेवा हेतु बुलाए जाने पर कभी-कभी वास्तविक पति ईर्ष्या अनुभव करते हैं। दूसरी आर डनिएल केरी (आयु 31 वर्ष) का, जो अभी तक तीन 'भाड़े के पति' रख चुकी हैं, कहना है कि यद्यपि प्रारंभ में 'भाड़े का पति' बुलाने पर उनके पति को आश्चर्य हुआ था परंतु अब वह भी उनकी आवश्यकता स्वीकार करने लगे हैं। मार्क हौकिन्स के अनुसार कभी-कभी ऐसा भी होता है कि यदि वास्तविक पति किसी कार्य को करने हेतु उठने में देरी करते हैं, तो पत्नियों उन्हें धमकी दे देती हैं कि अभी 'भाड़े के पति' को बुला लूँगी और महाशय तुरत उठकर कार्य करना आरंभ कर देते हैं।



स्वभैंसगार

अँग्रेजी भाषा का एक शब्द है 'सब्सिडी' जिसका प्रशासकीय भाषा में हिंदी में अनुवाद किया है 'अनुदान'। 'सब्सिडी' में किसी को दी जाने वाली किसी वस्तु अथवा सेवा में दान का एक अंश होता है, जिसे हमारे देश के जनसेवकों ने अनुदान (छोटा दान) बड़ी मफ़ाई से बना दिया है। मेरा विचार है कि जब प्रथम बार 'सब्सिडी' का प्रयोग प्रशासकीय-वृत्त में हुआ होगा और प्रशासकीय अधिकारियों से इस शब्द का हिंदी अनुवाद करने को कहा गया होगा, तभी उनके मस्तिष्क में इसे 'छोटा दान' बनाने की योजना बन गई होगी और इसीलिए उन्होंने इसकी हिंदी 'अनुदान' बना दी। फिर अरबो रूपए की ऐसी योजनाएँ बननी आरंभ हो गई होंगी, जिससे यह दान लाभार्थी व्यक्ति के लिए छोटा और जनसेवकों के लिए बड़ा साबित हो सके।

यूँ बात कोई ख़ास नहीं है और फिर ऐसी बातें तो होती ही रहती हैं पर बात बस इतनी है कि हमारे स्वतंत्र देश के चतुर प्रशासन ने मीधे-सादे प्रेमचंदी ग्रामीणों की अच्छी-ख़ासी प्रतिशत को तीन-चार दशकों में चार सौ बीसी में चाकचौबंद बना दिया था। स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् कान्वेंटों में पढ़े प्रशासकीय अधिकारियों को हारवर्ड में पढ़े अर्थशास्त्रियों ने बताया कि भारतवर्ष के गाँवों में बड़ी बेराजगारी है और जो ग्रामीण खेती के दिनों में रोजगार में व्यस्त भी रहते हैं, वे भी शेष दिनों में बेराजगार रहते हैं, इसलिए उन्हें वर्ष-भर रोजगार में व्यस्त रहना सिखाना चाहिए। चूँकि बात 'सही' ढंग से कार्यान्वित किए जाने पर उन

जनसेवकों-सहित बहुता को लाभकारी हा सकती थी, इसलिए फ़ाइनल पर आदेश हुआ, 'अविलंब स्वरोज्जगार योजनाएँ प्रस्तुत की जाएँ।' और बन गई मत्स्य-पालन योजना, मधुमक्खी-पालन योजना, कुक्कुर-पालन, भैंस-पालन योजना आदि-आदि। सीमित साधनों को ध्यान में रखत हुए इन योजनाओ द्वारा अनुसूचित जाति व जनजाति के परिवारों को 'लाभान्वित' करने का लक्ष्य बना और प्रत्येक लाभार्थी को सुविधा हेतु ऋण एव 'सब्सिडी' देने का प्रावधान किया गया। यह बात अलग है कि योजनाएँ बनानेवालों को या तो ज्ञात नहीं था अथवा उन्होंने जानना न चाहा हो कि मछली पालने के लिए तालाब में पानी भरा रहना आवश्यक होता है या भैंस खरीदने हेतु लिया हुआ ऋण तभी चुकाया जा सकता है, जब गाँव में उसके दूध का ख़रीददार उपलब्ध हो और लाभग्राही के पास उसे चारा खिलाने की सामर्थ्य हो।

इन योजनाओ के प्रचार-हेतु सरकारी खर्च पर कमिश्नरों व कलेक्टरों आदि हस्तियों के ख़ूब दौर हुए और सरकारी कर्मचारियों ने गाँव की पढ़ी-लिखी उच्चजातियों को जब योजनाओ और उनके वृत्तछिद्रों (लूपहोल्स) को भली-भाँति समझा दिया, तो मेरे गाँव में भैंस ख़रीद अभियान छिड़ गया। रामदीन, श्यामा, कढ़ोरे, बड़े, तुतुआ (सभी जाटव), छगा, माँगे, हरीराम (सभी धोबी) पट्टे व छुन्ने (वाल्मीकि) आदि सब क प्रार्थना-पत्र ले लिए गए। सभी लाभार्थियों की औचित्य रिपोर्ट आनन-फानन में लेखपाल द्वारा दे दी गई, घोडा-डाक्टर ने सभी खरीदी जानेवाली भैंसों को स्वस्थ होना पाया, पशु-मेले में सभी भैंसों की क्रय रसीद बन गई और स्थानीय बैंक मैनेजर ने सभी को ऋण और अनुदान की राशि निर्गत कर दी और यह सब करने में किसी ने किसी की हक-तलफ़ी नहीं की। हक के अनुमार अनुदान-राशि का केवल दस प्रतिशत लेखपाल ने लाभार्थी को उचित बनाने हेतु, दस प्रतिशत घोडा डाक्टर ने भैंस को स्वस्थता का प्रमाण-पत्र देने हेतु, दस प्रतिशत मेला कर्मचारियों ने विक्रय प्रमाण-पत्र देने हेतु, दस प्रतिशत बैंकवालों ने धनगशि अवमुक्त करने हेतु लिए। चूँकि किसी प्रकार की जाँच होने पर पूरी प्रक्रिया को पाक-साफ़ घोषित करने का गुरुतर भार प्रायः तहसील

स्तर के अधिकारियों पर होता है, अतः उनके हक का तीस प्रतिशत उन्हें चुपचाप पहुँचा दिया गया। हालांकि इसमें से दस प्रतिशत उच्चाधिकारियों को पहुँचाने हेतु लिया जाना बताया गया। इस समस्त आयोजन का सफल बनाने हेतु को-आर्डिनेटर के रूप में मेरे गाँव के फौजदार शर्मा ने कड़ा परिश्रम किया था, अतः दस प्रतिशत उनका हिस्सा उन्हें दिया गया। अनुदान का शेष बीस प्रतिशत एवं ऋणराशि पाकर लाभार्थी भी प्रसन्न थे कि इस साल कुछ दिन तक खाने-पीने का खर्च चलाने के लिए अनाज उधार लेने नहीं जाना पड़ेगा और फौजदार शर्मा का पिछला ऋण भी कम-से-कम आशिक रूप से चुकता हो जाएगा।

अब आप पूछेंगे कि जब सभी अनुसूचित जातिवालों के यहाँ मुराई जैसे बाँधकर उन्हें स्वरोजगारी बना दिया गया, तो यह अनाज उधार लेने की बात क्यों! तो भैया, इसका गूढ रहस्य मुझे तब उजागर हुआ, जब मैं अपनी नौकरी से छुट्टी लेकर गाँव गया। कढोरे और हरीराम, जिनके पास अपनी दो-दो बीघा जमीन थी, एक तुड़ा-मुड़ा कागज लेकर मेरे पास आए और पूछा, 'भैया, जू का है' मैंने पढ़कर बताया कि यह तो बैंक वाले ने तुम्हारा खेत नीलाम करने की नोटिस भेजी है। विस्तार से पूछने पर उन्होंने पूरी बात बताई कि फौजदार शर्मा ने उससे एक फार्म पर यह कहकर अँगूठा लगवाया था कि सरकार ने तुम लोगों के भले के लिए योजना चलाई है और फिर छः हजार रुपए दिलाए थे।

मैंने पूछा, 'तुमने उससे जो भैंस खरीदी, उसका क्या हुआ? उसे बेचकर शीघ्र कर्जा चुका दो।'

'भैंस हमने कहीं खरीदी। भैंस तो उनमें से किसी ने नहीं खरीदी जिन्हें रुपए मिले। भैंस तो बस एक फौजदार शर्मा की थी, जिसे बार-बार खरीदना व बेचना दिखाया गया था।'

'फिर पाए हुए रुपए का क्या हुआ?' मैंने पूछा।

'सभी रुपया पानेवाले व्यक्ति बड़े लोगों के कर्जदार थे। किसी न उसे चुकता कर दिया और किसी ने उसका व्याज चुकता कर दिया। हम दोनों का रुपया भी फौजदार शर्मा का कर्ज चुकाने में निकल गया।'

मैं जानता था कि मेरे ग्राम के इन गरीब लोगों के साथ जो हुआ

हैं, उसका निराकरण अत्यन्त कठिन है और जिन लोगों ने किया है उनको दंडित कराना भी उतना ही कठिन है। सभी कागज़ी कार्यवाही 'नियमानुकूल' की गई होगी और फिर भारत में मौखिक गवाह प्रायः या तो हाकिमों के सामने तक पहुँचते-पहुँचते स्वयं ही बदल जाता है अन्यथा हाकिम लोग वकीले पफ़ाई की 'अकाट्य' दलीलों के सामने उन्हें बेहिचक अविश्वसनीय मान लेते हैं। फिर भी इन निरक्षर, निरीह एवं निर्बल लोगों को सांत्वना देने-हेतु मैंने उनकी एक अर्जी लेकर जिला कलेक्टर को भेज दी।

सो अन्य गाँवों में चाहे जो भी हुआ हो, मेरे गाँव की 'स्वभैंसगार' योजना का परिणाम यह हुआ है कि तथाकथित लाभार्थियों का लुटिया-डडा भी नीलाम हो रहा है।



एरिस्टो-डौग होटल

अँग्रेजी में कहावत है, 'एवरी डौग हैज हिज डे'। पता नहीं अँग्रेजों ने यह कहावत क्यों बनाई है, क्योंकि मुझे लगता है कि अँग्रेजों के यहाँ तो 'एवरी डे इज ए डौग डे'। वहाँ आदमी-औरतों को तो कड़ी मेहनत करनी पड़ती है तब कहीं अच्छा खाना-पानी व कभी-कभी 'हौली डे' का मज़ा मिलता है लेकिन कुत्ते-कुतियों को तो बस मालिक-मालकिनों की गोद में उछलकर बैठ जान व दिन में चार-छः बार उनका मुँह चाट लेने-भर में चुनिदा खाना, भरपूर सेवा और प्यार मिल जाता है। अपने बर्मिंघम-प्रवास के पहले दिन जब मैंने टी.वी. पर कुत्तों को ऐंसें गोरे गालों को चाटते देखा, जिन्हें चूमने को हिंदुस्तानी देवता भी स्वर्ग में तरसते होंगे, तो मैंने अपने मनुष्य के रूप में पैदा होने के दुर्भाग्य पर माथा पीट लिया। परंतु फिर सोचा कि ऐसा तो केवल टी वी पर ही होता होगा, घर-घर में नहीं! अपने हिंदुस्तान में भी तो फिल्मी हीरो को खुद के चार-उचक्का होने पर भी उछलते-कूदते हुए सुंदरतम् हीरोइनें मिल जाती हैं।

दूसरे दिन मरे मेजवान डा प्रमोद मिश्रा ने मुझे अपने सहकर्मी, पड़ोसी व दोस्त डा.डेविड हार्ट से मिलाया। डेविड साहब से धीर-धीरे मेरी दोस्ती हां गई, क्योंकि हम दोनों को साथ टहलने का शौक था और टहलने के बाद डेविड साहब मुझे अपने घर में चाय पिलाते थे। डेविड साहब सबेरे टहलते वक्त अपने साथ अपनी कुतिया को भी टहलाने ल जाते थे। टहलाने का खास मकसद होता था, उसे पास के एक नाले के

किनारे ले जाकर झाड़ियों में शौच कराना। पहले दिन मैंने देखा कि डेविड साहब एक हाथ में कुतिया के पट्टे का फीता पकड़े हुए थे और दूसरे हाथ में प्लास्टिक का एक थैला। मैंने उत्सुकतावश कहा कि इस थैले का क्या होगा तो बोले कि कुतिया को फुटपाथ पर ही हाजत लग जाए, तो उसकी विष्ठा इसी में भर लेगे और कूड़ेदानी में फेंक देगे। रास्ते में गदा छोड़ देने पर फाइन हो जाएगा। टहलकर लौटने पर डेविड साहब ने कुतिया को ट्वाइलेटपेपर से सौंचाया। फिर एक सुदर से डिब्बे से डौंग-फूड निकाला और एक बान-चाइना के डिब्बे में रखकर फ्रिज से दूध निकालकर उसमें मिलाया। फिर बड़े अदब से कुतिया से अनुनय-विनय की, तब वह चलकर आई और उन पर एहसान-सा करते हुए नाश्ता किया। उस समय डेविड साहब उसे ऐसे प्यार से देख रहे थे जैसे संभवतः कभी अपने पुत्रों को भी नहीं देखा होगा। जब कुतिया नाश्ता कर चुकी तो डेविड साहब ने उसके मुँह को गरम पानी में धोया और नैपकिन से साफ किया। फिर फुर्सत मिलने पर मुझसे चाय को पूछा। पहला दिन होने के कारण यह सब देखकर मुझे मतली-सी आ रही थी, इसलिए मैंने चाय को मना कर दिया, तो डेविड साहब सोफे पर मेरे सामने बैठ गए और मुझसे हिंदुस्तान के मौसम के बारे में पूछने लगे। तभी वह कुतिया उछलकर उनकी गोद में बैठ गई और पहले तो उन्हें यहाँ-वहाँ सूँघती रही और फिर उनके हाथ चाटने लगी। डेविड साहब कुतिया के प्यार में अभिभूत हो गए और मुझे बताने लगे कि वह जर्मनी की असली नस्ल वाली कुतिया है और बहुत ही संवेदनशील है। पहली बार जब वह हौली डे पर स्पेन गए थे और उसे 10 पाउण्ड (650रु.) प्रतिदिन की दर से बैड एवं ब्रेकफास्ट वाले कनेल-क्लब में छोड़ गए थे तो उसने लगभग अनशन कर दिया था और मौन-व्रत भी धर लिया था। उनके लौटने पर ही भरपेट खाना खाया था और वह भी उनके द्वारा मान-मनुहार करवाने के बाद ही।

मैंने डेविड साहब के घर से आकर जब डा.प्रमोद मिश्रा को यह सब हाल सुनाया, तो उन्होंने कहा कि यहाँ रिवाज़ है। कुत्ते-विल्लियों की देखभाल के प्रति शासन का रवैया भी बड़ा सख्त है। अगर कोई इन्हे

भूखा रख या इनकी मारपीट कर दे और क्रुएलिटी टु एनीमल की शिकायत कोई टेलीफोन से भी कर दे तो तुरत जाँच प्रारंभ हो जाती है और फ़ाइन के अतिरिक्त सजा भी हो जाती है। मैंने पूछा कि डेविड साहब के यहाँ कोई दिखाई नहीं दिया, क्या अभी तक कुँआरे है। डा प्रमोद ने बताया कि शादी तो हुई थी और एक बेटा व एक बेटी भी है। पिछले साल बीवी इसलिए छोड़कर चली गई कि सोते समय डेविड साहब की नाक बजती है और बेटा 12वाँ पास करने के बाद यह कहकर अलग रहने लगा कि वह फुटबाल के जिस 'क्लब को सपोर्ट' करता है उसके डैड उसके प्रतिद्वंद्वी क्लब को सपोर्ट करते है। बेटी का 'ब्याय-फ़्रेड' लदन मे है इसलिए वह उसके साथ रहने चली गई है। डेविड साहब की सबसे वफ़ादार साथी उनकी कुतिया ही तो है।

मैं कुत्ते-बिल्लियो के विषय मे अपनी इस नई जानकारी से उत्पन्न आश्चर्य पर काबू पाने की कोशिश कर ही रहा था कि एक दिन बी.बी.सी. के बिग-ब्रेकफ़ास्ट कार्यक्रम में 'एरिस्टोडौग होटल' के विषय मे बताया जाने लगा। वह सब देख-सुनकर मेरे कान खुले रह गए और आँखें फटी रह गई। होटल के रिसेप्शन पर टेलीफ़ोन, फ़ैक्स, कंप्यूटर और ग्राहको (कुत्ते-बिल्ली) तथा उनके मालिकों को अटेंड करती एक बडी स्मार्ट, रिसेप्शनिस्ट बैठी थी। कुत्तों के कमरों में गद्देदार बैड तो थे ही, साथ में बैठने के लिए सोफ़ा, झूलने के लिए झूला एव अपने को निहारने के लिए ड्रेसिंग-टेबिल भी करीने से लगे हुए थे। एक कोने में टेलीफ़ोन तथा सी डी. प्लेयर शोभायमान हो रहा था, जिन्हें कुत्तों के टेस्ट के अनुसार उचित समय पर ऑन किया जाता था। बीच में दरी पर उनके खेलने-हेतु महँगे-महँगे खिलौने रखे हुए थे, जिनमें किसी की कीमत बीस पाउंड थी तो किसी की पचास। शौकीन मिज़ाज कुत्तों के लिए सर पर लगाने को पाँच पाउंड की टोपी, पहनने को बीस पाउंड की ड्रेस और आँखों पर लगाने को 10 पाउंड का चश्मा रखा हुआ था। उन्हें नहलाने हेतु स्पेशल शावर थी, जिसमे गर्म व ठंडे पानी के इतज़ाम के अलावा तरह-तरह के खुशबूदार शैम्पू रखे थे। एक सफ़ेद कुतिया को एक गोरी स्त्री बड़े प्रेम से पुचकार-पुचकारकर नहला रही थी। फिर कुत्तों का सैलून दिखाया गया, जिसमें एक विशेषज्ञ नाई कुत्तों के बाल काटकर

सुंदर डिजाइन बना रहा था। वह बड़ी सफ़ाई से उनके नाखून भी काट रहा था। एक कमरे में कुत्तों के डाक्टर उनके कान से किलनी या संभतः कान का मैल निकाल रहे थे, उनकी आँखों का कीचड़ पोंछ रहे थे और उन्हें विटामिन की गोलियाँ खिला रहे थे। कुत्तों के ड्राइंग-रूम में उनके बैठकर (या चल-फिरकर) गपशप करने का प्रबन्ध था। वैसे अँग्रेजों की तरह अँग्रेज कुत्ते माधारणतः अजनबियों से बात नहीं करते हैं, अतः ड्राइंग-रूम ख़ाली-सा था।

अंत में हमें बताया गया, कि कुत्तों का यह फ़ाइव-स्टार होटल काफी 'रीजनेवल' किराए वाला है। प्रति कुत्ते के बैड-ब्रेकफ़ास्ट का किराया केवल पच्चीस पाउंड प्रतिदिन है और अन्य खाने-पीने का खर्च 10 पाउंड प्रतिदिन अतिरिक्त है। इस प्रकार केवल तीन हजार रुपए प्रतिदिन का खर्चा आता है।

अब आप ही बताइए, अगले जन्म में ईश्वर से हिंदुस्तानी मनुष्य का जन्म माँगना बुद्धिमानी होगी या अँग्रेजी कुत्ते का।



इंग्लिदी

इस वर्ष लंदन मे 14 सितबर से 18 सितबर तक आयोजित विश्व हिंदी-सम्मेलन मे कोई ऐरे-गैरे-नन्धू-खैरे तो आमंत्रित नहीं किए गए थे, जो मैं आमंत्रण पाकर अपने को हिंदी का माना हुआ सेवक समझने का गर्व न करता। मैं 13 सितंबर को ही लंदन पहुँच गया था। यद्यपि आयोजकों ने मेरे रुकने का सामूहिक प्रबध किया था परंतु मैं रिचमंड हिल पर रहनेवाला एक मित्र के घर पर रुक गया। मेरे कमरे की खिडकी से टेम्स नदी की छटा देखते ही बनती थी। ढलान पर बने लॉनों के पार टेम्स मंथर गति से बहती थी और उसके बाएँ किनारे पहाडी पर बना एक ऊँचा-सा चर्च और दाहिने किनारे पर दूर तक फैला घना जंगल ऐसे लगत थे जैसे कुशल चित्रकार की तूलिका ने बड़े मनोयोग से चित्रित किए हों।

यद्यपि 14 सितबर से 16 सितबर तक की प्रतिदिन की गतिविधियों में मैंने बड़ी रुचिपूर्वक भाग लिया था, परंतु फिर भी मन मे एक चोर छिपा-सा लगता था कि सम्मेलन अपने उद्देश्य मे पता नहीं सार्थक एवं सफल है भी अथवा नहीं। कहते हैं कि मन का चोर कभी-कभी सत्य को उजागर करनेवाला भूत बनकर प्रकट हो जाता है। समापन-दिवस का एक दिन पूर्व 17 सितबर को प्रातः रिचमंड स्टेशन पर अंडरग्राउंड ट्रेन पकडकर मैं होवर्न स्टेशन पर उतर गया था और वहाँ मे पैदल ही इंडिया हाउस. औल्डविच (भारतीय उच्चायुक्त का कार्यालय) इस आशा से चला गया था कि संभवत कोई जाना चहरा वहाँ मिल जाए पर

मे, जहाँ विश्व हिंदी सम्मेलन आयोजित था, जा चुके थे। मैं ऑल्डविच पर बस पकड़कर वहाँ के लिए चल पड़ा। उस दिन सुबह स अच्छी धूप निकली थी और वह लदन की शीतलता को कुनकुना बना रही थी। बस के नंबर में भूल हो जाने के कारण मैं वेस्टमिंस्टर चौराहे पर पहुँच गया और वहीं उतर पड़ा। वेस्टमिंस्टर के चौराहे पर पहुँचने पर बाएं स्थित वेस्टमिंस्टर की भव्यता और दाहिने स्थित वेस्टमिंस्टर ऐबी की सुरम्यता देखते हुए मैं स्तब्ध होकर खड़ा था कि पीछे से मुझको संबोधित किसी की आवाज़ ने चौंका दिया, 'टुम इंडिया से आया है?'

मैंने मुड़कर देखा कि वह एक अत्यंत बूढ़ा अंग्रेज था और ऐसी वंशभूषा पहने था, जैसी मैंने अपने स्कूल की किताबों में अंग्रेज शासकों को पहने देखी थी। यद्यपि वह मुझसे हिंदी में बोला था; परंतु मुझे ऐसा लगा कि हिंदी में उत्तर देने में कहीं वह अंग्रेज यह न समझ लें कि मैं कम पढ़ा-लिखा देहाती हूँ, इसलिए मैं सम्मानपूर्वक बोला, 'यस सर'। चूंकि वह हिंदुस्तान का शासक-जैसा दिखनेवाला गौरा था, अतः मेरे मुँह से उसके लिए 'सर' निकलना स्वाभाविक ही था।

'टुम क्या देख रहे हो? वेस्टमिंस्टर?' उसने गर्व के भाव से कहा।

'यस सर। बट आई हैव टु गॉ सून टु पार्टिसिपेट इन दी वर्ल्ड हिंदी कान्फरेंस।' मैंने घड़ी में समय देखते हुए कहा।

मेरी बात सुनकर वह बूढ़ा जोर से हँसा और बोला, 'ओह वर्ल्ड हिंदी कान्फरेंस। आई हैव आल्सो कम फ्रॉम एफार टु नो द आउटकम।' फिर उसने मुझे विश्व हिंदी सम्मेलन के आयोजन-स्थल जाने की बस का नंबर बताया और मैं 'थैंक्यू सर' कहकर चलने लगा तो वह फिर हँसा और बोला, 'दी प्रोसिडिंग्स आफ दी कान्फरेंस मस्ट बी ए ग्रेट फन।'।

उस दिन सम्मेलन-कक्ष में बैठकर मेरा मन सम्मेलन की कार्यवाही में कम लग रहा था और उस बूढ़े द्वारा कहे शब्द बार-बार याद आ रहे थे। इसका एक कारण यह भी था कि अधिकतर वक्ता प्रायः हिंदी को राष्ट्रभाषा की प्रतिष्ठा न दिए जाने, राजभाषा के रूप में भी हिंदी का यदा-कदा ही प्रयोग किए जाने, विज्ञान, तकनीकी, सूचना-प्रसार एवं

व्यापार के क्षेत्र में हिंदी के समुचित शब्दकोश तक का विकास न किए जाने एवं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के क्षेत्र में हिंदी के स्थान पर प्रायः इंग्लिश के शब्दों के प्रयोग किए जाने की स्थिति को विभिन्न प्रकार के शब्दावरण पहनाकर दुहराते रहे थे परंतु कोई ऐसा ठोस समाधान नहीं दे रहे थे अथवा ऐसा मार्ग नहीं दिखा रहे थे कि हिंदी को विश्व-भर में नहीं तो कम-से-कम भारत में तो प्रतिष्ठा एवं सम्मान का स्थान प्राप्त हो सके। सम्मेलन की कार्यवाही लंबे-लंबे भाषणों के साथ सायकल देर तक चलती रही और जब समाप्त हुई तो मेरा मन कहीं एकांत में कुछ पल बिताने को बेचैन हो रहा था।

सम्मेलन-कक्ष से बाहर निकलकर मैंने पाया कि आकाश में गहरे बादल छाए हुए थे एवं बड़े वेग से शीतल वायु बह रही थी। मैं बस से टेम्स नदी के लदन-ब्रिज की ओर चल पड़ा। वहाँ पहुँचकर पुल से नीचे उतरकर टेम्स नदी के किनारे बने पैदल टहलने के मार्ग पर एकांत में रखी हुई एक पत्थर की बेच पर एक किनारे बैठ गया। उस स्थान से टावर-ब्रिज साफ दिखाई दे रहा था और मैं टावर-ब्रिज को खुलकर ऊपर उठते हुए और उसके नीचे से निकलते हुए जहाजों की तन्मयता से देख रहा था कि मुझे लगा कि मेरी बेच के दूसरे कोन पर कोई अन्य व्यक्ति आकर बैठ गया है। मैं उसकी ओर मुड़ ही रहा था कि मुझे चौंकाते हुए वह बूढ़ा बोल पड़ा, 'कैसी रही वर्ल्ड हिंडी कान्फरेंस इन लडन?'

मैं उस घटाटोप बादलों से घिरी रात में टेम्स के किनारे के उस एकांत में उस बूढ़े के पुनः अचानक मिल जाने से आश्चर्यचकित हो गया और कुछ-कुछ भयभीत भी। उसके स्वर में भी व्यग्य एवं गर्व का ऐसा मिश्रण था, जिसका अभिप्राय मैं नहीं समझ पा रहा था। फिर भी अपने मनोभावों पर किसी तरह नियंत्रण रखकर मैंने उत्तर दिया, अच्छी थी। हिंदी को समुचित प्रतिष्ठा न प्राप्त होने एवं उसका पर्याप्त प्रचार न होने के विषय में काफी चर्चा हुई।'

बूढ़ा मेरी बात सुनकर जोरदार ठहाका लगाकर हँसा। टेम्स के वहत पानी की कलकल पर उसकी हँसी की आवाज़ ऐसे गूँजी जैसे बरसात में पर्वतों पर बहते झरने के राग पर भूस्खलन की दहाड़ हाबी हो जाती है।

फिर वह बोला, 'मैं जानता था। जानता था यही होगा।'

मैं अपनी घबराहट एवं जिज्ञासा कठिनाई से रोक पा रहा था, इसलिए स्वतः बाल पडा, 'सर, आप कैसे जानते थे?'

वह बोला, 'यजुर्वेद के बीसवें चैप्टर की पचीसवी ऋचा में लिखा है— 'राष्ट्र के ज्ञानी और शूर पुरुष एक विचार से राष्ट्रहितकारक कार्य करते रहें और आपस में विरोध न खड़ा करें, इसी से राष्ट्र का हित होगा और जनता का कल्याण होगा।' इंडियन्स ने यह यजुर्वेद शायद ही पढ़ा और समझा हां, लेकिन मैंने उन्नीसवीं सेंचुरी में पढ़कर समझ लिया था कि इंडियन्स एक विचार से न सोचे, इसके लिए जरूरी है कि उनमें हिंदी भाषा के लिए प्रेम और गर्व न रहने दिया जाएँ। इसीलिए मैंने ब्रिटिश गवर्नमेंट को सिफारिश की थी कि हिंदुस्तानियों को अँग्रेजी शिक्षा-दीक्षा देकर एक ऐसे लोगों के वर्ग का निर्माण किया जाना चाहिए, जो रग और रक्त में हिंदुस्तानी हो, किंतु अपनी रुचियाँ, अपने चिंतन, अपने चरित्र और अपनी बुद्धि में एकदम अँग्रेज।'

इस बूढ़े की गर्वोक्ति का प्रसंग एव आशय अब गूढ़तर एव अधिक रहस्यमय होता जा रहा था और मेरे हृदय की धड़कन बढ़ा रहा था। साथ ही उसकी निकटता से अब मेरे रोंगटे खड़े हो रहे थे पर न तो उस निर्जन स्थान से भाग पाना संभव प्रतीत हो रहा था और न किसी को महायता-हेतु बुला पाना।

एक क्षण साँस लेकर वह वूढ़ा फिर बोलने लगा, 'तुम्हारी गीता भविष्य को देखने व समझने की दृष्टि देती है, पर तुममें से कितनी ने उस पढ़ा है? वह तो मैंने पढ़ी थी और मैंने उसका भरपूर उपयोग भी किया था। तुम हिंदुस्तानी लोग समझते होंगे कि गोरों से आजादी पाकर तुम आजाद हो गए हो। पर मैंने तभी अपनी पॉलिसी से हिंदुस्तान में ऐसे काले अँग्रेज पैदा कर दिए थे, जो हिंदुस्तान की किसी भी भाषा को न तो राष्ट्रभाषा का सम्मान देने देंगे और न अँग्रेजी के सम्मान उस पर गर्व करेंगे। हम तो इंडिया में व्यापार करके ज़्यादा-स-ज्यादा प्राफ़िट (लाभ) कमाने आए थे। वह प्राफ़िट अँग्रेज अब भी उठाता है और उठाता रहगा, क्योंकि मैंने ऐसे बीज बो दिए थे कि सिर्फ अँग्रेजी जानने वाल दो-तीन

परमट हिंडुस्ताना हा हिंडुस्तान की अ और सत्ता पर छाए रह
 पहले हमने इन काले अँग्रेजो का हिंग्लिश सिखायी थी, जिससे वे हमारे
 स्वामिभक्त बनकर बाकी हिंडुस्तानियों को नीची निगाह से देखें और अब
 वही लोग टी वी मीरियला मे धड़ाधड इंग्लिदी बोल रहे हैं, जिसमें
 हिंडुस्तानियों की नई पीढ़ी हिदी-भाषा को प्रायः उपहास और अपमान की
 वस्तु समझती है। ये लाग हिडी-सस्कृति में भी नई पीढ़ी में
 अधिक-से-अधिक वितृष्णा पैदा कर रहे हैं। हिंडुस्तानी पहले गोरे अँग्रेजो
 का गुलाम था- 'अब काले अँग्रेजा का है और रहेगा।'

यद्यपि उस व्यक्ति की यह कुटिलतापूर्ण गर्वाक्ति मेरे आत्मसम्मान
 को ठेस पहुँचा रही थी; परंतु उसमें निहित सत्य को एकदम नकारने में
 मैं अपने को असमर्थ पा रहा था। उसके साँस लने हेतु क्षण-भर रुकने
 पर मैं बाल पड़ा, 'बट, हू आर यू?'

यह सुनकर वह बूढ़ा पुनः अट्टहास करते हुए बेंच से उठकर
 खड़ा हो गया और बोला, 'टुम हिंडुस्तानी हिस्ट्री को न तो ठीक से पढते
 हो और न उससे कुछ सीखते हो। टुम लॉर्ड मैकाले को जाने व समझे
 बिना ही वर्ल्ड हिडी कान्फरेंस के आयोजन-मात्र में हिडी को प्रसारित
 एव प्रतिष्ठित करना चाहते हो?'

फिर मेरे पलक झपकाते ही वह बूढ़ा अंतर्धान हो गया, पर उसका
 अट्टहास टेम्स की लहरो पर दूर तक तैरता रहा।



फितरत-ए-मौत

पैदाइश एक कसरत है तो मौत एक फितरत। किसी के पैदा होने के लिए कसरत दूसरों को करनी पड़ती है और अगर वे ऐसी कसरत करने में इन्कार कर दें, तो कोई पैदा ही नहीं होगा, लेकिन मौत अपनी खुद की फितरत है, और वह सबके पास आती है चाहे कोई उसे बुलाए या न बुलाए। इतना ही नहीं, अगर आप कभी पैदा होने की मोच या अपनी पैदाइश टालने की सोचे, तो आपके हजार हुनर बेकार हो जाएँगे, लेकिन अगर कभी मरने का इरादा करे तो शुक्र खुदा का कि लम्हें स लेकर महीनो की मौत, खामोश विदाई से लेकर चीखा-कराहों से भरी मौत और इज्जतदार मौत से लेकर कुत्ते की मौत तक बिना कोई खास तिकड़म किए हासिल हो जाएगी।

पर इसका यह मतलब कतई नहीं है कि मरना कोई आसान काम है। खुद मरने के लिए भी इसान को हजार पापड़ बेलने पड़ते हैं और कही बच गए तो धारा 309 आई.पी.सी के तहत जेल की हवा खानी पड़ती है। मान लीजिए आप जवान हैं और हस्बमामूल मुआ दिल किसी हुस्ना को पेश कर दे, पर उस हुस्ना के पास दिल रखने की जगह पहले से भरी हुई है या उसे आपका दिल सँजोकर रखने-जैसी चीज ही नहीं लगती है या फिर अब्बाजान, अम्मीजान या शौहर के डर के मारे वह आपका तोहफ़ा कुबूल करने की हिम्मत नहीं कर पाती है और आप ऐसे दुत्कारे हुए दिल को वापस लेने के बजाय उसे नेस्तनावूद करने की मोच, तो सारी दुनिया आप की राह में रोड़े अटकाने को कम्प कस लेगी।

अलविदा से पहले आप अपने जालिम मोहसिन क नाम एक तहरीर जरूर छोड़ना चाहेंगे और जहाँ आपन तहरीर लिखी, तभी उस तहरीर को इस तरह छिपाने की नई जहमत आन पड़गी कि वह आपकी जहाँ-पार छल्लोंग लगाने से पहले किमी के हाथ न पड़ जाए, और साथ-ही-साथ आपकी इस जहाँ से रुखसती के बाद आपकी ज़ालिम कातिल को जरूर मिल जाए- 'नहीं तो मुर्गी जान से गई और खाने वाले को मज़ा न आया' वाली कहावत सच हो जाएगी। खुदा-न-खास्ता अगर आपकी तहरीर, जो आपने अपने मोहमिन को आपकी रुखसती क बाद सम्हालकर तकिए के नीच रखकर आँसू बहाने के मतलब से लिखी थी, कहीं पहले ही आपकी बीबी, अब्बा या दोस्त के हाथ पड़ गई, तो न सिर्फ़ आपकी तदवीर बेकार हो जाएगी बल्कि आपको समझाने-बुझाने और लताड़ने के अलावा आप पर ऐसी चौकसी कायम कर दी जाएगी कि आपको जेल की सलाखों मे रहना बेहतर लगेगा। इसके अलावा आपके जाननेवाले तमाम मनचलो को चटखारे लेकर आपकी जगहँसाई करने का मौका अलग मिल जाएगा। मैं मानता हूँ कि अगर आपने बचपन से ही भाई-बहिन की टाफ़ियों या स्कूल के साथियों की कॉपी-पेसिल चुराने और छिपाकर रखने मे महारत हासिल कर रखी है, तो आप अब तहरीर भी सही जगह छिपाने मे कामयाब हो जाएँगे, लेकिन यह तो मंज़िल की बस एक सीढ़ी है। अब सवाल खड़ा होगा कि शहादत का सबमे आसान और कारगर तरीका क्या होगा? अब अगर आप सोचते हैं कि रेल के सामने कूदना ठीक रहेगा, तो आपको अपनी कटी-फटी लहू-लुहान बाँहें, टाँगें और धड़ नज़र आने लगेगे और आप सोचेंगे कि ऐसी तकलीफ़देह मौत से तो जिंदा रहना ही बेहतर है। पेट्रोल छिड़ककर माचिस की तीली लगाने मे जिस्मानी तकलीफ का डर तो लगेगा ही, महँगे पेट्रोल की ख़रीद मे जंब के हल्के होने का ख़याल भी आएगा। संखिया खाकर आँखे बंद करने की तरकीब मे न सिर्फ़ ज़हमत है बल्कि पकड़ जाने का ख़तरा भी हद दर्ज़ का है, क्योंकि हो सकता है कि उस दिन दरोगा जी को और कोई 'गुड-वर्क' दिखाने का मौका न मिला हो और आपको ही पुडिया रखने के इल्ज़ाम मे धर लें। फिर तो आप धोबी के गदहे की तरह न तो घर के रहेंगे और

न घाट के। सब तरकीबें सोचने और ख़ारिज़ करने के बाद शायद आप अपनी सायकिल को गोमती पुल के फुटपाथ पर रखकर, हाल में खरीदी चप्पल का नदी में जाया होने से बचाने के लिए सायकिल के बग़ल में उतारकर, पुल के बीचो-बीच अकड़कर खड़ होकर, और दुनिया क हसीन नज़ारे- जिनमें छतरमजिल और क्लाक्स हॉटल भी शामिल है- आखिरी बार देखकर एक लंबी छलॉंग लगाना पसंद करेगे। वैसे हो सकता है मेरी बीबी की तरह पानी में डूबने से आपको 'फोबिया' हो और आप इस मंसूबे को भी ख़ारिज़ कर दें, लेकिन चूँकि आपने अपनी जालिम मोहमिन को छकाकर सतान की ठान ही ली है, इसलिए मैं मान लेता हूँ कि आप इसी तरकीब पर अमल करेगे।

अब बढिए आगे। आप जैसे ही अपना इरादा पक्का कर सायकिल के हैंडिल पर हाथ रखेंगे तो अम्मी झिडक देंगी कि वेटा इस चिलचिलाती धूप में कहाँ जा रहे हो? अब आप उन्हें कैसे बताएँ कि घूप कम होते ही गोमती-पुल के फुटपाथ पर इतने ठेलेवाले, सब्जी वाले, खोमचे वाले, पालिश वाले आ धमकते हैं कि आपके सायकिल रखकर चप्पल उतारते ही आपको दबोच लंगे, क्योंकि गोमती में कूदने के इन नजारों से उनकी अच्छी तरह वाक्फ़ियत पहले से हो चुकी हाती है। अगर अम्मी की निगाह से आपने अपने को बचा लिया तो भाभीजान टपक पड़ेगी कि लल्ला ज़रा एक ढोली पान लिए आना, पानदान ख़ाली हो गया है। आप भाभीजान को भी नहीं समझा पाएंगे कि शहादत के लिए सर पर कफ़न बाँधकर जानेवालो से पान मँगवाना साफ़-साफ़ हिमाक़त है। मान लीजिए कि बिना अम्मी, भाभी, बीबी, अब्बा, आपा या मामू के रोके आप बडी होशियारी में घर से निकल आए, तो बहुत मुमकिन है कि पडोसी की बिल्ली न सिर्फ़ आपका रास्ता काट जाएगी बल्कि देर तक शक की निगाहों से आपको घूरती भी रहेगी, जैसे कि समझ रही हो कि हो न हो आपकी रूह ज़रूर किसी शम्मा पर परवाने के मानिंद फ़ना होने को तडप रही है। अगर पडोसी की बिल्ली घूप की वजह से कहीं छॉह में अलसायी पड़ी रहे और आपका रास्ता न काटे, तो नुक़कड की पान की दुकान पर बैठा एक आँख का दिन्नु ही पान पर कत्था लगाते नज़र आ

जाएगा, और फिर इम्तिहाने-आशिकी में आपके पास होने में रुकावट पड़ने का शक पैदा कर देगा। लेकिन चूँकि इस नेक काम के लिए आपने पक्का इरादा बना लिया है, इसलिए मैं माने लेता हूँ कि आप दिन्नु की फूटी आँख को नज़रअदाज करते हुए आगे बढ़ जाएँगे। पर आपने यह तो साँचा ही नहीं कि तेज धूप में लखनऊ की सड़को का तारकोल पिघलने लगता है और मुआ ऐन मौक़े पर सायकिल के टायर में चिपककर ट्यूब के पुराने पचर पर लगी हुई रबड़ की चिंदी को छुड़ा देता है। अब जब सायकिल पचर हो जाएगी तो आप मरने के लिए घूप में पैदल चलना तो पसंद नहीं करेगे। ज़रूर आप पंचर जोड़ने की दूकान पर सायकिल लेकर पहुँचेंगे! पर यह क्या, जेब तो खाली है और भला कोई जेब में पैसे भरकर नदी में कूदने थोड़े ही जाता है। पर मैं माने लेता हूँ कि पचर जोड़ने की दुकानवाला आपकी जान-पहचान का है और आप द्वारा निहायत ज़रूरी काम के नाम पर गिड़गिड़ाने पर पचर की जुडाई उधारी कर देगा। तब कही पुल की चढाई पर हाँफते हुए पैदल मारकर आप थके-हारे पुल पर पहुँचेंगे। ऐसे में हस्बेमामूल आप जिंदगी की आखिरी छल्लाँग लगाने से पहले कुछ सुस्ताना चाहेंगे और आपने अभी सुकून के चद लम्हे ही बिता पाए होंगे कि शहर के नजदीकी गाँवों से आनेवाला कोई-न-कोई सब्जीवाला नज़र आने लगेगा। आपको मरने के दिन भी सुकूँ नहीं नसीब होगा और आप दौड़कर सायकिल और चप्पल सहेजकर फुटपाथ पर रख के पुल पर आदमक़द खड़े होकर कूदने का इरादा करेगे कि तभी बेरहम माशूक की आखिरी बार याद आ जाएगी और साथ ही आपके ज़हन में यह खाका भी खिंचने लगेगा कि आप की लाश बालू में औंधे मुँह पड़ी है और आपकी माशूका, अम्मी और अब्बा उस पर दहाड़ मारकर रो रहे हैं। हो सकता है कि इस बीच गँवार सब्जीवाला आपको देख ले और दौड़कर दबोच ले, पर अगर आप अपनी मौत के रास्ते में रुकावट डालनेवालों के बारे में अभी भी चाक-चौबंद हैं तो उसके आपकी कमर में हाथ डालने से पहले ही आप छल्लाँग लगा देगे। पर आपने पहले से यह जानना तो ज़रूरी नहीं समझा था कि गर्मियों के दिनों में गोमती का ज़्यादातर पानी लखनऊ शहर के प्यासे बाशिंदों को

जिदा रखने के लिए शहर शुरू होने के पहले ही गऊ घाट पंपिंग स्टेशन पर नदी से बाहर निकाल लिया जाता है। अब लीजिए आप पानी में पहुँच गए हैं लेकिन वह आपको डुबाने के लिये नाकाफी है। हाँ मैं जानता हूँ कि आपके इरादों में कहीं कमी नहीं है और आप उतने पानी में भी डूबने में कोई कौर-कसर नहीं छोड़ेंगे, क्योंकि आपन सुन रखा है कि लोग चुल्लू-भर पानी में भी डूब जाते हैं।

पर ऐसी हालत में भी आपके जुनून को मंजिले-मकमूद मिलने का एक ही इमकान है कि आपको पकड़ने के लिए दौड़नेवाला गँवार कोई ऐसा होशियार दुनियादार हो कि सोचे जाने दो, हमें क्या लेना-देना है, 'कोई सब्जी खरीदनेवाला ग्राहक तो था नहीं और फिर इसकी चप्पल भी अपने झुलसते पैरों में फिट आ गई है।' पर अगर कहीं उसके दिमाग में इसानियत से मुहब्बत का फितूर सवार है, तो वह हो-हल्ला करके आपके बकोशिश मरने के शौक को पूरा नहीं हाने देगा और आखिर में आप पुलिस की हवालात में पड़े ख्वाब देख रहे होंगे कि क्या उस जालिम का दिल अब भी नहीं पसीजेगा।



हिचकियाँ और हिचकियाँ

हिचकियाँ आना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है; परंतु हिचकियाँ बंद करना एक कला है। विभिन्न प्रकार की हिचकियाँ का आना अलग-अलग उपायो से बंद होता है। मुझे छोटेपन में जब हिचकियाँ आती थीं तो मेरी अम्मा (दादी) कहती थीं कि काई मुझे याद कर रहा है और दो घूँट पानी पिला के मेरी हिचकियाँ बंद कर देती थी, परंतु मेरे पाँच साल के पोते को पिछले महीने जब हिचकियाँ आनी आरंभ हुई और मैंने यह कहकर कि उसे कोई याद कर रहा है दो घूँट पानी पिलाया तो उसकी हिचकियाँ और बंद गई। जब घंटों तक हिचकियाँ बंद न हुई तो मैंने एक डाक्टर को बुलवा भेजा। पोते साहब नंबरी बुकराद है और उन्हें डाक्टरों से खास चिढ़ रहती है, क्योंकि बार-बार बीमार पड़ने के कारण डाक्टर लोग उन्हें अक्सर इन्जैक्शन लगाते रहते हैं। उस दिन भी जैसे ही डाक्टर ने उनको अपने पाम्प बुलाया, वह विदक गए और भागने लगे। डाक्टर का माबका ऐसे बच्चो से रोज़ पड़ता होगा। अतः उन्होने उठकर पोते को अपने पाम्प खींच लिया और झुककर उसके पेट को हाथों से दबा-दबाकर परीक्षण करने लगे। तभी गुस्से में पोते साहब ने अपनी दाहिनी टाँग उठाकर मारी, जो उनकी गंजी खोपड़ी में लगी और डाक्टर साहब सन्न रह गए। इस क्रिया के साथ ही पोते साहब को हिचकियाँ आना एकदम बंद हो गई। यह सब इतना क्षणिक हुआ था और संपूर्ण दृश्य इतना हास्यास्पद था कि मैं यह समझ नहीं पा रहा था कि मैं पोते को डाटूँ या डाक्टर से दुःख प्रकट करूँ या हिचकियाँ बंद करने की इस नई कला का आविष्कार

करने हेतु पोते को शाबासी दूँ। डाक्टर साहब भी क्षण-भर में घटित इस घटना और उसके परिणाम से अवाक् थे। यद्यपि इलाज में डाक्टर साहब की किसी दवाई की आवश्यकता नहीं पड़ी थी; परंतु उस दिन मैंने उन्हें दुगुनी फीस देकर विदा किया।

हो सकता है कि लगातार हिचकियाँ आना कोई आनुवंशिक मर्ज हो, क्योंकि मेरे बेटे (पोते साहब के बाप) को भी एक बार यह मर्ज हुआ था। देर तक हिचकियाँ बंद न होते देख मैं उस एक डाक्टर के पास ले गया था। उसने एक खूब कड़वी दवा दी थी, जिसे मेरे बेटे ने बाद में चौकलेट मिलाने का लालच देने के बाद ही खाई थी, परंतु न तो कड़वी दवा और न मीठे चाकलेट से हिचकियों का आना बंद हुआ था। तब मेरे एक मित्र ने बड़े आत्मविश्वास के साथ बताया था कि ऐसे मर्जों का इलाज केवल होम्योपैथी में है और एक स्वनामधन्य होम्योपैथ का पता भी बताया था। मैंने बेटे को यह समझाकर कि होम्योपैथी की गोलियाँ मीठी होती हैं, उसे होम्योपैथ के पास ले जाने को राजी कर लिया था। होम्योपैथ महोदय ने मेरे बेटे को बगल के स्टूल पर बिठाकर उससे प्रश्नों की झड़ी लगा दी थी :

- तुम्हें कब से हिचकियाँ आ रही हैं?
- आज सुबह से!
- उस वक्त तुम क्या कर रहे थे?
- नाश्ता कर रहा था।
- तुम उस वक्त गरम चीज़ खा रहे थे या ठंडी?
- न गरम न ठंडी!
- तुम्हें गरम चीज़ें पसंद हैं या ठंडी?
- अगर काफी हो तो गरम और आइसक्रीम हो तो ठंडी।
- पर दोनों में क्या ज़्यादा पसंद है?
- दोनों ज़्यादा पसंद हैं।
- तुम्हारा नाश्ता मीठा था या नमकीन?
- दूध मीठा था और दोसा नमकीन।
- क्या तुम्हें हाल में बुखार आया था?

- नहीं!

- जब तुम्हें बुखार आता है तो तुम दायीं करवट लेटना पसंद करते हो या बायीं ?

- बुखार में कोई करवट पसंद नहीं आती, बस करवट बदलता रहता हूँ ।

- क्या तुम?

होम्योपैथ साहब ने अपना अगला प्रश्न करने के लिए मुँह खोला ही था कि मेरा पुत्र जो देर से अपनी हँसी रोक रहा था, बेतहाशा हँस पड़ा और उसकी उस हँसी के साथ ही हिचकियों का आना बद हो गया। उस दिन मुझे होम्योपैथ साहब को फीस देना काफी खला था ।

मेरे बचपन में भी एक घटना घटी थी, जिसमें हिचकियाँ बंद करने की एक नई विधि का आविष्कार हुआ था। मैं अपने माता-पिता के साथ जून की दोपहरी में एक खटारा टैक्सी में बैठकर इटावा से कानपुर जा रहा था । अगली सीट पर ड्राइवर के अलावा एक हट्टा-कट्टा मुच्छड़ बज्र गँवार पैसेंजर भी बैठा था।

एक जगह पर टैक्सी को हिचकियाँ आने लगी और वह झटके देकर चलने लगी। ड्राइवर ने टैक्सी सड़क के एक किनारे पर लगा दी थी और ब्रेक खोलकर हिचकियों रोकने का उपाय करने लगा- रेडिएटर को पानी भी पिलाया। फिर ड्राइविंग सीट पर लौटकर चाभी घुमाई तो हिचकियाँ उसी तरह आ रही थीं। इसलिए वह फिर उतरकर इंजिन पर ठोक-ठाक करने लगा। हम लोगों का गर्मी के मारे बुरा हाल हो रहा था और सामने की सीट पर बैठे मुच्छड़ का चेहरा गुस्से से लाल हो रहा था। जब दुबारा ड्राइवर क वापस आकर चाभी घुमाने पर हिचकियाँ पुनः आईं तो उससे नहीं रहा गया और वह उतरकर कार के सामने चला गया और 'धस्साले की' कहते हुए इंजिन में दो लाते मारीं। उसकी इस हरकत पर मेरा हँसी के मारे बुरा हाल हो रहा था और यह देखकर तो हम सभी की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा कि इंजिन ने न केवल हिचकियाँ लेना बंद कर दिया था वरन् उसकी आवाज़ पहले से अधिक 'स्मूथ' हो गई थी।

शासकीय सेवा के दौरान मुझे एक नए ढंग की हिचकियों और

उनके दूर करने की कला का ज्ञान हुआ है। यह है फाइलो के सचालन में आनेवाली हिचकियाँ। मैंने अमरीका की यूनिवर्सिटी में उच्च शिक्षा हेतु एडमीशन तथा स्कालरशिप प्राप्त कर ली थी और वहाँ जान के लिए नियमों में प्राविधानित 'स्टडी लीव' के लिए मैंने एक वर्ष पहले से अपना प्रार्थना-पत्र सचिवालय को प्रेषित कर दिया था। जब स्मृतिपत्रों के बावजूद छः माह तक कोई उत्तर प्राप्त नहीं हुआ तो मैंने संबंधित संयुक्त सचिव से वार्ता की, जिसने तुरंत आदेश निर्गत करने का आश्वासन दिया।

परंतु जब अगले एक माह तक कोई आदेश नहीं मिला तो मैंने एक दूत (कर्मचारी) संबंधित सैक्शन में भेजा, जहाँ ज्ञात हुआ कि मेरी पत्रावली अभी तक कनिष्ठ सहायक के पास ही हिचकियों में लगे रही है। तब मैंने एक ऐसे आई ए एस अधिकारी से सैक्शन आफिसर को शीघ्रता करने को कहलवाया, जिसका उस पर कुछ ज़ोर था। इसका एक माह बाद मेरे पास एक लंबा-सा पत्र आया, जिसमें कई बिंदुओं पर सूचना एवं स्पष्टीकरण माँगे गए थे। मैंने उनका उत्तर बिना विलंब किए भेजा और इस कसरत के 4 माह बाद मुझे 'स्टडी लीव' पर जाने की अनुमति भी प्राप्त हुई; परंतु इतनी देर से कि संबंधित यूनिवर्सिटी में कोर्स पहले से ही आरंभ हो चुका था और मुझे अपना कार्यक्रम रद्द करना पड़ा। मुझे बाद में पता चला कि पत्रावली की हिचकियों को लक्ष्मी एवं अमूल के प्रयोग से ही समय के अंदर दूर किया जा सकता था। वैसे लंबे अनुभव के बाद अब मैं जान गया हूँ कि एक अन्य कला भी इसमें बड़ी कागगर है और वह वही है, जो मेरे बचपन में मेरे साथ टैक्सी में सफ़र करने वाले गँवार ने इजिन के साथ की थी।



पारदर्शिता

आजकल पारदर्शिता का हर क्षेत्र में बड़ा जोर है। आज के विद्वत्जन, प्रशासक, वकील, नेता सभी कहते हैं कि पारदर्शिता के बिना समाज और देश का सुधार नहीं हो सकता। इसलिए पारदर्शिता आज आधुनिकता का 'सिंबल' (द्योतक) भी बन गई है। कुछ वर्ष पूर्व तक पारदर्शिता की कोई बात करे तो काँच या पानी की याद आती थी, क्योंकि वही दो पारदर्शी वस्तुएँ रोज-रोज दिखाई देती थीं, पर आज किसी नेता के भाषण, किसी अधिकारी के आदेश, साहित्यकार के लेख अथवा किसी निर्णय में पारदर्शिता का जिक्र किया जाता है तो इसका अर्थ होता है घूस लेने के उद्देश्य से रखी जानेवाली गोपनीयता की अनुपस्थिति।

पर यदि जनता-जनार्दन के मन में राम और बगल में ईंटे हों और अर्थ का अनर्थ हो जाए तो इसमें पारदर्शिता का क्या दोष! हमारी 'फर्टिलिटी' (उत्पादन की क्षमता) का कहीं कोई सानी नहीं है, चाहे वह बच्चों के उत्पादन का क्षेत्र हो अथवा शब्दार्थ निकालते समय बौद्धिक दाव-पेंच लगाकर स्वलाभकारी अर्थों का उत्पादन। इसके चलते पारदर्शिता के भी अनेक अन्य अर्थ चल पड़े हैं। आज के हमारे विज्ञापनों को ही लीजिए। युवक एवं युवतियों को पानी में झीने वस्त्र पहनाकर अथवा वस्त्र उतारकर विज्ञापनों में पारदर्शिता का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है। इससे हमारी युवा पीढ़ी में पारदर्शिता की भावना की उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है।

हमारे टी.वी. कार्यक्रम हमें अपने व्यवहार को पारदर्शी बनाने का

प्रभावशाली पाठ पढ़ा रहे हैं। जैसे अगर बच्चे को बाप की बात समझ न आए तो कह देगा, 'डॉट बी स्टुपिड, पापा' और बिटिया को मम्मी की बात पसंद न आए तो मुँह पर कह देगी, 'यू आर ए बोर, मम्मी'। बहू द्वारा साम-ससुर का लिहाज कर शालीनता से बात करना पारदर्शिता के सिद्धांत के खिलाफ है, क्योंकि इसका अर्थ हुआ कि बहू अपने मन की भडास या अपने मुख से निकलनेवाली गाली को बाहर न आने दे और छिपाकर रखे, तां व्यवहार में पारदर्शिता कहां रही!

युवक-युवतियों के आपसी व्यवहार में भी खूब पारदर्शिता पनप रही है। जैसे दुपहिए पर पीछे बैठने के समय आगेवाले का खुलेआम चिपका लेना, क्लबां व पार्टियों में काम-पिघामा का पारदर्शी प्रदर्शन करना, विवाह के बिना हमबिस्तर होने को मात्र फ्रेड होने की संज्ञा देना और यदि विवाह कर लिया हो तो भी अपनी उच्छृंखलता को पारदर्शी रखना और किसी भी दिन एक-दूसरे से छुटकारा प्राप्त कर लेना; और उसके बाद भी गुड फ्रेड बने रहना।

किसी कार्यालय में जाइए तो पारदर्शिता ही पारदर्शिता नजर आएगी। प्रायः चपरासी, और बाबू से लेकर साहब तक किसी को आप इस विषय में गोपनीयता बरतते नहीं पाएँगे कि आपको अपना कार्य कराने के लिए कितना दाम लगेगा। अब वे जमाने लद गए, जब साहब ऊँची कुर्सी पर बैठे रहते थे और पेशकार लोग मेज के नीचे धीरे से हाथ डालकर आपके बढ़ाए हुए नोट ले लिया करते थे। यद्यपि साहब तिरछी नजर से देख लेते थे कि नोट कड़क है या नहीं, पर ऐसा दिखाते थे कि उन्होंने देखा ही नहीं। नवीन प्रक्रिया पूर्णतः पारदर्शी बना दी गई है। जाइए और साहब से सीधे बात कीजिए और बेहिचक दाम देकर काम कराइए।

हमारी शिक्षा-पद्धति भी अब पारदर्शी हो गई है। पहले जब आप परीक्षा देते थे तो उत्तर पुस्तिकाएँ जाँचकर परिणाम आने तक समस्त प्रक्रिया गोपनीय रखी जाती थी। अब सर्वप्रथम तो छात्रों को स्पष्ट कर दिया जाता है कि उनके द्वारा परीक्षा में प्राप्त होनेवाले अक अध्यापक को दी जानेवाली ट्यूशन-फीस एवं इग्जाम-कांट्रैक्ट (परीक्षा का ठंका) की राशि के समानुपाती होंगे। परीक्षा का प्रश्नपत्र बनानेवालों एवं छापने वालों

का भी अब पारदर्शिता में विश्वास बढ़ गया है। व प्रश्नपत्र को 'आउट' करके संपूर्ण परीक्षा-प्रक्रिया को पारदर्शी बनाने में अपना योगदान बड़े मनोयोग से देते हैं।

भाषणों में भी पारदर्शिता का एक नया आयाम जुड़ गया है। नेताओं के भाषण का असत्य अंश आजकल पूर्णतः पारदर्शी होता है। अब उनका विश्वास लुकी-छिपी बात कहने में नहीं रह गया है और अब उनको इसकी आवश्यकता भी नहीं रह गई है, जनता-जनार्दन भी पारदर्शी हो गई है। वह नेताओं के भाषणों का असत्य स्पष्टतः समझती है परंतु वाट देने के मामले में उसके सिद्धांत पारदर्शी हैं कि वोट अपनी जाति-धर्म वाले को दो अथवा अपने को अनुचित लाभ दिलानेवाले को दो।

सरकारी नौकरियों में हमारी चयन की प्रक्रिया भी प्रायः पारदर्शी रहती है। घूस देनेवालों अथवा तगड़ी सिफारिश लगानेवालों को पहले से पता रहता है कि चुना हमें जाना है, बाकी तो बस नाटक है। विदेशियों ने हमारी पारदर्शिता में खलल डालने के लिए कंप्यूटर का आविष्कार कर दिया और हमें कंप्यूटर से कापियाँ जाँचना सिखा दिया। इमसे कंप्यूटर-विधि से परीक्षा कराने की माँग ने जोर पकड़ा। तब पुरानी प्रक्रिया से लाभ उठानेवाले नेताओं और अफसरों ने पहले इसका इस आधार पर विरोध किया कि कंप्यूटर तो एक घोर अंधकारपूर्ण डिब्बा है, उसमें पारदर्शिता का क्या सवाल। पर अब उन्होंने नई तरकीबें निकाल ली हैं। पर्यवेक्षण एवं पारदर्शिता बनाए रखने के नाम पर लिखित परीक्षा में वरिष्ठताक्रम में आनेवाले सभी अभ्यर्थियों की सूची पता-सहित माँगा लो और फिर बिना भेदभाव किए सूची के सभी अभ्यर्थियों से चयन-शुल्क जमा करा लो। जा अभ्यर्थी साक्षात्कार के उपरांत चयनित हो जाएँ, उनका चयन-शुल्क मार लो और शेष में यदि कोई वापस माँगने का साहस कर सके तो पारदर्शिता की रक्षा करत हुए उसे वापस कर दो।

संपूर्ण संसार हमारी तीक्ष्ण बुद्धि का लोहा कोई यूँ ही थोड़े ही मानता है।



श्वेत क्रांति

हमारा देश क्रातियों के युग से गुजर रहा है।

पहले एक स्वतंत्रता की क्रांति आई थी, जिसने अँग्रेजों के शासन को उखाड़ फेंका और जनता-जनार्दन को स्वतंत्र कर दिया! यहाँ तक कि कालाबाजारी, अपहर्ता, माफिया, नेता, कर्मचारी, अफसर सब स्वतंत्र हो गए और जब सब स्वतंत्र हो गए तो देश की लूट-खसोट के सह-उद्देश्य में एक-दूसरे के मौसरे भाई भी बन गए।

फिर हरित क्रांति आई, जिसने न केवल देश-भर की फाइलों से भुखमरी को समाप्त कर दिया वरन् व्यापारियों और एफ.सी.आई. के गोदामों में इतना अनाज भर दिया कि उन्हें पूरी छूट मिल गई कि चाहे जितना बेचो, खाओ या सड़ाओ। उनकी चाँदी के साथ घुनों, चूहों, छछूदरो की भी चाँदी हो गई।

तीसरी क्रांति 'गरीबी हटाओ' की आई, जिम्ने गाँव-गाँव में बैंकों खोलकर और दलितों-निर्धनों के लिए नई-नई योजनाएँ चलाकर ग्रामीण गरीबों को सूदखोरो से मुक्त होने का अवसर उपलब्ध कराया अथवा कम-से-कम उसका स्वप्न दिखाया। इसके साथ-साथ ग्रामीण चालाकों को बैंक व राजस्व विभाग के कर्मियों से मिली-भगत कर फर्जी योजनाओं के आधार पर गरीबों को ऋण स्वीकृत कराकर अनुदान की रकम की बंदर-बाँट करने के प्रचुर अवसर प्रदान किए, जिसके परिणामस्वरूप गरीबों को सरकार का ऋणी बनकर अपना घर-द्वार अथवा खेती नीलाम करा देने के भी प्रचुर अवसर प्राप्त हुए।

चौथी 'शैक्षिक क्रांति' आई, जिसके अतर्गत गाँव-गाँव में प्राथमिक पाठशालाएँ खुल गई, जिनके अध्यापक मफेद कुर्ता-धोती पहनकर बच्चों को पढ़ाने के बजाय अन्य सफ़ेदपोश लोगों के गुणों में निपुण हो गए। हों इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि नालायक-से-नालायक बच्चों का प्रत्येक कक्षा में पास कर देने के मामले में इन्होंने कभी तगदिली नहीं दिखाई। इसी दौरान कस्बों और नगरों में अनगिनत हाईस्कूल और इंटर कालेज भी स्थापित हुए, जिनमें अधिकतर ने छात्रों को पढ़ाने का खटारा करने के बजाय उन्हें परीक्षा में ठेके पर नकल कराने का सुगम्य, छात्र-प्रिय एवं लाभप्रद धंधा अपनाया। इसी क्रांति के दौरान विश्वविद्यालयों में कम-से-कम पढाकर अधिक-से-अधिक डिग्रियाँ उत्पादित करने की होड़ लग गई। ऐसे हरे-भरे खेतों को देखकर नेताजी भी ललचाने लगे और उन्होंने अपन भाषणों में छात्रों को सन्मार्ग पर चलने-हेतु इस प्रकार प्रेरित किया, 'तुम्हें किताबें पढ़ने की क्या जरूरत है, मेरा चुनाव लड़ाकर मुझे कुर्सी दिलाओ। फिर डिग्री और नौकरी तो हम तुम्हें यँही दिलवा देंगे।' और ऐसे नेताजी ने कुर्सी मिलने पर नकल की ठेकेदारी अपने रिश्तेदारों और चमचों को दिलाकर छात्रों को खूब पास कराया और फिर उनसे अपना हक वसूल कर उन्हें नौकरी भी दिलवाई। इसप्रकार देश में न केवल शैक्षिक क्रांति आई, वरन नौकरियों की बिक्री में भी कांति आई।

'उसके बाद आई सूचना क्रांति' गाँव-गाँव टेलीफोन और टेलीविजन लग गए। इसने तो जैसे हमें 20वीं सदी से 21वीं सदी में एकदम ढकल दिया। रमपुरा में बैठकर न्यूयार्क, लंदन जहाँ चाहें बात करो और जहाँ का चाहो प्रोग्राम देखो। डिस्कवरी चैनल पर दुनिया-भर की ख़बर प्राप्त करो। साथ-ही-साथ युवक-युवतियों के नंगे बदन देखकर आँखें सको या अपने बच्चों को मुफ़्त प्रशिक्षण दिलाओ कि माँ-बाप और दादी-दादा की कैसे अवहेलना की जाती है और उन्हें कैसे अपमानित और तिरस्कृत किया जाता है।

'औद्योगिक क्रांति' ने भारत को संसार के 10 अग्रणी औद्योगिक देशों की पंक्ति में ला खड़ा किया। नए-नए उद्योग खुलते गए, जो बाद में वैश्वीकरण के अतर्गत विदेशी कंपनियों द्वारा विलीन कर लिए गए।

इसे लाने-हेतु देश के तमाम काला धन संगृहीत करनेवालों को अपना धन श्वेत करने के उपाय सुझाए गए और अवसर उपलब्ध कराए गए और तर्क दिया गया कि तभी तो अप्रचलित धन का उद्योगो हेतु उपयोग संभव है। इससे देश के समझदार लोगों को भविष्य में और काला धन एकत्रित करने की 'सुप्रेरणा' मिली, जिससे वे देश के अर्थशास्त्रियों को भविष्य में भी काले धन को श्वेत करने की योजनाओं पर विचार कर लागू कराने का सुअवसर उपलब्ध करा सके।

बीसवी सदी के अवसान के अवसर पर भी दश में एक महान क्रांति आई। वह है 'श्वेत-क्रांति'। यह क्रांति अन्य क्रांतियों की अपेक्षा अनूठी थी। इसमें 'हींग लगे न फिटकरी और गंग चोखा' वाली कहावत चरितार्थ होती थी। देश की गायों-भैंसा की मख्या लगातार कम हो रही थी। उनके चरागाह समाप्तप्राय हो रहे थे और उनकी नस्ल-सुधार के उपाय भी विशेष प्रभावी नहीं थे परंतु उत्तर भारत में दूध की नदियाँ बहने लगी थीं। दूधिए अब केवल सुबह-शाम ही दूध नहीं देते थे बरन उनके अनुसार दोपहर, दोपहर बाद, अर्धरात्रि जब चाहो तभी उनकी गाएँ दुही जा सकती थी। सबको गाढा दूध प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हो रहा था कि पता नहीं किस काने की नजर लग गई कि पुलिस, प्रशासन को दूध की जाँच कराने की सूझी। जाँच के परिणाम ने देश के दूधियों को विश्व के श्रेष्ठतर अनुसंधानकर्ताओं की श्रेणी में लाकर खड़ा कर दिया। पता चला है कि इस देश के दूधियों को दुग्धोत्पादन-हेतु गायो, भैंसों, बकरियों अथवा गदहियों की आवश्यकता नहीं पडती है। बस यूरिया, साबुन और ग्लूकोज मात्र की उपलब्धता से वे देश में श्वेत-क्रांति लाए हुए हैं। कुछ डाक्टरों, जिन्हें शायद कोई दूधिया पानी मिला दूध पिलाता रहा होगा, फतवा दे दिया कि ये दूधिए कैसर का व्यापार कर रहे हैं और इन्हें पकडा जाए और कुछ सिरफिरे पुलिसवालो ने धर-पकड भी शुरू कर दी। बस फिर क्या था, देश के महान कर्णधार यह कैसे सह सकते थे? और उन्होंने अपने नेतृत्व में इन दूधियों का संगठन बनाकर एलान कर दिया कि तुम बिल्कुल परवाह न करा। उच्च वर्ग के लोगो में, जो ही प्रायः दूध पीते हैं, कैसर फैलाना तुम्हारा जन्मसिद्ध कर्तव्य है। मुझे कुर्सी मिलन

दो मै तुम पर कोई कानूनी कार्यवाही नही होने दूगा और कानून लागू करनेवालों को नौकरी से निकाल दूंगा। हमारे नेतृत्व में संगठन बनाओ और तब तक हड़ताल पर रहो, जब तक दूध में यूरिया मिलाने की तुम्हारी माँग मान न ली जावे।

पाठका, आप आश्वस्त रहें। जब बीसवीं सदी का अंत इतना क्रांतिपूर्ण और स्वास्थ्यवर्धक है तो हमारे देश के कर्णधारों की कृपा से इक्कीसवीं सदी का आरंभ कम क्रांतिपूर्ण नहीं होगा।



डाकिनी

जितने मुँह उतनी बात।

कोई मुस्कराते हुए कहता है, 'अपने मुँह मियाँ मिट्टू बना करते थे। 'आज देखी बहादुरी।'

कोई अशिष्ट नवजवान कहता, 'सुना है बीबी सबेरे-सबेरे धोती साफ कर रही थी। गंदी जो हो गई थी।'

कोई कान पकड़ता, 'अरे ज्यादा न बोलो। हो सकता है किसी डाकिनी ने छछूंदर का रूप धर लिया हो और तुम्हें खा जाए।'

गाँव-भर के घर-घर में आज बमबहादुर सिंह के यहाँ घटित घटना की चर्चा हो रही थी। ख़ूब चटखारे ले लेकर। घटना भी क्या, बस छोटी-सी बात थी। सबेरा होने पर जब बमबहादुर सिंह की घरवाली ने कमरे का दरवाज़ा खोला, तो उसके नीचे चिपकी एक मरी हुई छछूंदर मिली।

मरा हुआ चूहा मिला होता, तब तो चर्चा होना स्वाभाविक था, क्योंकि हो सकता है कि चूहा प्लेग के कीड़ों से मरा हो और उसकी मौत गाँव में प्लेग फैलने का संदेश हो। पर यह तो छछूंदर थी, फिर इतना हंगामा क्यों?

हंगामा इसलिए हो रहा था कि यह घटना बमबहादुर सिंह के घर घटित हुई थी किसी ऐरे-गैरे-नत्थू-खैरे के घर नहीं। गाँव में और गाँव के बाहर भी जो लोग रिटायर्ड लांस नायक बमबहादुर को जानते हैं, उनकी बहादुरी का लोहा मानते रहे हैं। किसे नहीं मालूम कि 1971 की बाँग्ला

दश की लड़ाई में उन्होंने पाकिस्तानी फाजियो को दर्जना स्थानों पर धूल चटाई थी और उन्हें वीरचक्र से अलकृत भी किया गया था। गाँव का बच्चा-बच्चा उनके मुँह से उनकी बहादुरी का कोई-न-कोई किस्सा दस-पाँच बार सुन चुका है। स्त्रियो तक को ज्ञात है कि एक दिन जब वह एक टुकड़ी के साथ घांग अधिकार की रात्रि में पूर्वी बंगाल के जंगल में पाकिस्तानी फौजों के उस अड्डे का पता लगाने निकले थे, जहाँ पाकिस्तानियों ने अपने शस्त्रास्त्र का डिपो बना रखा था, तभी पाकिस्तानी फौजों ने उन्हें घेर लिया था और उनके अन्य साथी मारे गए थे, परंतु वह अँधेरे का फायदा उठाकर जंगल में छिप गए थे। फिर उन्होंने छिपकर भागने के बजाय अकेले ही चुपचाप एम्यूनीशन डिपो पर हैंड ग्रेनेड से हमला बोल दिया था, जिसमें उनके तमाम बम व ग्रेनेड दग गए थे और उस हडबडी का लाभ उठाकर वह सुरक्षित वापस आ गए थे। उनकी इस बहादुरी और सूझ-बूझ की भूरि-भूरि प्रशंसा हुई थी।

कल जाड़ा की अँधेरी रात में मकान के सभी दरवाजे अच्छी तरह बंद कर बमबहादुर सिंह एक कमरे में अपनी पत्नी के साथ गहरी नींद सोए हुए थे कि अचानक उनके कमरे के दरवाजे पर खड़खड़-खड़खड़ की आवाज़ होनी लगी। बमबहादुर सिंह की कच्ची नींद टूट गई। अपनी सूझ-बूझ के अनुसार बिना आँख खाले वह चुपचाप पलंग पर पड़े रहे और दरवाजे पर होनेवाली खड़खड़-खड़खड़ सुनते रहे, क्योंकि उन्होंने सुन रखा था कि कच्छा-बनियान गिरोह के चोर जब चोरी करने घर में घुसते हैं तो उस समय तुरंत सिर पर वार करते हैं, जब कोई घरवाला जागकर उठने को होता है। जब काफी देर तक कोई हमला नहीं हुआ लेकिन दरवाजे पर खड़खड़ होती रही, तो बमबहादुर सिंह ने आँखे खोली पर कमरे में कोई नजर नहीं आया। वह समझे कि डकैत दरवाजा तोड़कर घर में घुसने की कोशिश में है और उन्होंने झट से अपनी बंदूक में कारतूस भरकर कुड़ा चढा लिया। फिर दरवाजे की तरफ बढ़कर तानकर साहस जुटाकर धीरे से बोले, 'कौन?' परंतु उधर से कोई उत्तर नहीं मिला, पर खड़खड़ भी बंद नहीं हुई। 'दो-एक बार फिर कौन' कहने पर भी कोई उत्तर नहीं मिला, पर खड़खड़ भी बंद नहीं हुई, तब उन पर एक

अजब-सा ख़ौफ़ छाने लगा। उन्होंने एक बार फिर धीरे से कहा, 'कौन है?' पर फिर कोई जवाब नहीं मिला। बस खड़खड़ की आवाज़ कुछ तेज हो गई। कहते हैं कि अनजान का डर किसी जाने शत्रु के डर से कहीं अधिक डगवना होता है। उन्हें अचानक याद आया कि उनकी दादी ने उन्हें बचपन में गाँव के परसादी के घर का किस्सा सुनाते हुए बताया था, 'गाँव के किनारे बने श्मशान-स्थल पर जब तक लाशें पहुँचती रहती हैं तब तक तो वहाँ बसनेवाली डाकिनी की भूख मिटती रहती है। लेकिन जब बहुत दिनों तक लाशें नहीं पहुँचती हैं तो डाकिनी अपनी भूख मिटाने को किसी के घर में घुसने की कोशिश करती है। वह बंद दरवाज़े को खटखटाती है और खोलते ही झपट्टा मारकर खा जाती है। परसादी के घर भी एक रात उसने दरवाज़ा खटखटाया था और उसके अधनींदे बेटे ने जैसे ही दरवाज़ा खोला था, वह उसे उठाकर भाग गई थी। बेटे की लाश तक नहीं मिली थी।

बमबहादुर सिंह ने फौज में अलौकिक शक्तियों से लड़ने की ट्रेनिंग तो पाई नहीं थी, जो सेफ़ पोजीशन लेकर उसे तड़ातड़ गोलियों से भून देते। फिर डाकिनी का क्या? कब कौन-सा रूप धर ले या अतर्धान हो जाए? उनके दिलोदिमाग़ पर डाकिनी हावी होने लगी और उन्हें ध्यान आया कि बहुत दिनों में उनके गाँव में कोई मौत नहीं हुई है, इसलिए आज भूखी डाकिनी ही उनके घर का दरवाज़ा खटखटा रही है। उन्होंने धीरे से अपनी पत्नी को पुकारा, जो अभी भी गहरी नींद में सो रही थी। हडबड़ाकर जागती हुई वह पति द्वारा 'डाकिनी-डाकिनी' पुकारे जाने पर समझी कि इन्हें कोई दौरा पड़ गया है। उसने घबराकर कहा, 'क्या हा गया है तुम्हें।' उसकी जोरदार आवाज़ पर दरवाज़े पर खड़खड़ कुछ दर को रुक गई, लेकिन बमबहादुर सिंह द्वारा पत्नी को इशारे से चुप कराकर धीरे से यह कहने पर कि दरवाज़े पर डाकिनी है, खड़खड़ाहट फिर आरंभ हो गई। पत्नी ने जब खड़खड़ाहट सुनी तो साहस कर कहा, 'मैं देखती हूँ कि कौनसी है 'डाकिनी', पर बमबहादुर सिंह ने उसे पकड़कर पिछले दरवाज़े की ओर खींचा। फिर दरवाज़ा खोलकर गली में जोर-जोर से चिल्लाने लगे, 'डाकिनी! डाकिनी!'। उनका शोर सुनते ही मुहल्लेवाले

लाठी, बल्लम, फरसा लेकर दौड़ आए। जब बमबहादुर सिंह ने कहा कि उनके कमरे के सामने के दरवाजे को डाकिनी खड़खड़ा रही है तो किसी की हिम्मत कमरे में घुसने की न हुई। उनके पड़ासी नेतराम दौड़कर ओझा को बुला लाए। उसने भी कमरे के पिछले दरवाजे से खड़खड़ाहट की आवाज़ आती सुनी। उसका सामना कभी असली डाकिनी से नहीं हुआ था। बस किसी-किसी स्त्री पर चढ़ी हुई डाकिनी को ही उसने उतारा था। इसलिए वह भी आगे बढ़कर दरवाजा खोलने का साहस न जुटा पाया। फिर भी अपनी साख बचाने के लिए उसने ओझाई शुरू कर दी। ओझाई का जितना अधिक धुँआ उस कमरे में घुसता, दरवाजे की खड़खड़ाहट उतनी ही बढ़ती जाती। अब गाँववाले और परेशान कि यह तो बड़ी निडर और बलवती डाकिनी है। बमबहादुर सिंह की सिट्टी-पिट्टी गुम हो रही थी, क्योंकि वह सोच रहे थे कि अगर आज वह बच भी गए तो डाकिनी का क्या, कही भी कभी भी हमला कर सकती है। पर धीरे-धीरे दरवाजे की खड़खड़ाहट शांत हो गई और उषाकाल का उजाला छिटकने लगा। बमबहादुर सिंह की पत्नी जो शुरू से ज़िद कर रही थी कि उसे दरवाजा खोलने दिया जाए, फिर नहीं रुकी। उसने आगे बढ़कर दरवाजा खोला तो दरवाजे के नीचे एक मरी छछूंदर को फँसा हुआ पाया। बेचारी दोनो दरवाजे के बीच की साँस में फँस गई थी और रात-भर निकलने का प्रयत्न करते-करते दम तोड़ चुकी थी।

गाँव के शैतान बच्चे अब पीठ पीछे बमबहादुर सिंह को छछूंदर सिंह पुकारने लगे हैं।



नाचीज रकीब

छुन्नन मियाँ मेरे पड़ोसी भी हैं और लँगोटिया यार भी। मुझे नहीं मालूम कि गहरे दांस्तो को लँगोटिया यार क्यों कहते हैं, क्योंकि ज़रूरी नहीं गहरे दोस्त लँगोट पहनते हैं। हम दोनों में से भी कोई लँगोट नहीं पहिनता है और न लँगोट का कच्चा है। छुन्नन मियाँ तो बड़े हाजी-नमाजी किस्म के आदमी हैं, शरियत की हर हिदायत को खुदा का हुक्म मानते हैं। इन्सानी रिश्तों में भी बड़े पुरखुलूस व मुहब्बती किस्म के हैं। अब बीबी के मसले को ही ले तो सुल्ताना भाभी के लिए उनकी मुहब्बत और वफादारी की पूरे मुहल्ल में मिसाल दी जाती है। एक बार जब दोनों में सख्त अनबन हो गई थी और सुलताना भाभी नाराज़ होकर यह कहकर मायके चली गई थी कि अब मेरा मुँह देखना, तो कितने गुमसुम रहने लगे थे और अल्लाह कसम जो उन्होंने घर के आस-पास उम्मीदवारी में चक्कर लगाती किसी हसीना की तरफ़ निगाह भी उठाई हो। जब काफी वक्त गुजर गया था और भाभीजान नहीं लौटी थी, तो एक दिन उनके मामूजान उन्हें ममझाने आए थे कि बेटा तुम्हें क्या कमी है? अल्लाह का दिया इतना है कि चार-चार वीवियों पाल सकते हो। फिर क्यों उस बवफा के लिए अपनी जवानी गारत करते हो। छुन्नन भाई मामूजान का लिहाज कर पहले तो सब चुपचाप सुनते रहे थे लेकिन जब मामूजान इशारों-इशारों में जवानी की दहलीज पर क़दम रखती अपनी हसीन दुखतर का जिक्र ले आए तो छुन्नन चुप न रह सके, और कुछ ऐसा कह गए थे कि मामूजान तब के गए आज तक वापस नहीं आए हैं। अलबत्ता

उड़ती-उड़ती यह ख़बर सुल्ताना भाभी को मिल गयी थी और वह एक दिन सौ फीसदी जिंदा (ख़ुदा उनकी उमर को नज़र न लगे) छुन्नन भाई के दौलतखाने में मुस्कगती हुई तशरीफ़ ले आई थी।

सुल्ताना भाभी के लिए छुन्नन भाई की बेपनाह मुहब्बत की एक वजह भाभी का बेदाग़ हुस्न भी है। पैतीस की उमर पाग़ करने और जवाँ होते दो बच्चों के बावजूद सुल्ताना भाभी अभी भी ऐसी लगती है कि पैग़ाम भेजने को दिल करे। उनका हुस्न छुन्नन भाई के लिए रकाबत का भी बायस रहा है। पर भाभी बड़ी नेकदिल है और मुझे ता हमशा सग़ देवर जैसा मानती रही है। कोई भी मौसम या वक़्त रहा हो, छुन्नन भाई व भाभी ने मेरा फ़राख़दिली से इस्तकवाल किया है और हमारी वातचीत में कभी कोई दुराव-छिपाव नहीं रहा है।

अब कल की ही बात ले लीजिए। शाम को मैं अपने घर पर वार हो रहा था तो छुन्नन भाई के घर चला गया। देखता क्या हूँ कि छुन्नन भाई अंडरवियर-बनियाइन पहने कमरे की हवा में कुछ ढूँढ़ते से नज़र आ रहे थे और जहाँ कोई मच्छर नज़र आ जाता, उस पर भूखे शेर-से झपट पड़ते। बीसियों मच्छरों की बेजान लार्शे फ़र्श पर दफनाए जाने का इतज़ार कर रही थी और दसियों मच्छर हाथ-पैर तुड़ाए तड़प रहे थे। मेरे कमरे में आने से छुन्नन भाई की जेहाद के जोश में कोई कमी नहीं आई बल्कि मुझे लगा कि उनके जुनूँ में इजाफ़ा ही हो गया है। मैं इस मंज़र को देखकर भौचक्का हा रहा था और कुछ कहने ही जा रहा था कि तब तक चौके से आती हुई भाभी नज़र आ गई। मैंन पूछा, 'भाभी, भाईजान को यह क्या हो गया है?'

भाभी खिलखिलाकर हँस पड़ीं और बोली, 'क्या बताऊँ भैया, तुम जानते ही हो कि अप्रैल के इस महीने में मच्छरों का कितना ज़ोर है। किसी तरह न तो कम होते हैं और न काबू में आते हैं। कछुआछाप के धुएँ के ऊपर मँडरा-मँडराकर नाचते हैं और गुडनाइट की खुशबू का इतर-गुलाब मानते हैं। मच्छरदानी लगाओ तो हनुमान जी की तरह सूक्ष्म रूप धर लेते हैं और अंदर नमूदार हो जाते हैं। अगर बहुत छोटें छोटों की मच्छरदानी ले आओ और उनमें टॉग़ फसने का डर हो तो मजनुू जैमी

दीवानगी के साथ मच्छरदानी के बाहर घात लगाए बैठे रहते हैं और बत्ती गुल करन के लिए या गुसलखाने जाने के लिए जरा भी मच्छरदानी खोली कि वरखुरदार अंदर हाजिर। फिर सोना हराम कर देते हैं। ठीक कान के ऊपर ब्रेक-डान्स करते हुए पाप म्यूजिक बजाएँगे और जरा भी हाथ-पाँव या मुँह खुला रह गया तो ऐसा ज़बरदस्त नशतर लगाएँगे कि मक्दरे तक खुजलाते रहिए। मारने का सोचिए भर कि आपके जहन की वात समझकर चारपाई के किसी कोने में जाकर छिप जाएँगे। आपके भाईजान इन हरकतों को तो किसी तरह बरदाश्त करते रहे हैं पर कल रात तो हद ही पार हो गई। एक मुश्किल-सा मच्छर इनका लहू पीकर मस्त होकर मच्छरदानी की छत पर ऊँघ रहा था। इन्होंने गुस्से में दोनों हाथ उठाकर मारने की कोशिश की, पर वह मुँहझौसा कहीं इनकी गिरफ्त में आने वाला था। इन्हें चकमा देकर उडा तो ये समझ ही न पाए कि कहीं जमीदोज हो गया है। ये उस ढूँढने के लिए चारपाई पर बैठे-बैठे ही भारतनाट्यम कर रहे थे कि इन्होंने देखा कि वह मेरे गेसुओं के ऊपर मँडरा रहा है। ये फिर जैसे ही उसे हलाल करने को दौड़े तो उसने मेरी जुल्फों में न जाने कहीं पनाह ले ली कि इनके लाख ढूँढने पर भी फिर नजर न आया। आपके भाईजान का पारा उस नाचीज़ रकीब की इस हरकत पर इस क़दर गरम हो गया है कि तभी से मच्छरों के कत्लेआम में मुब्तिला हैं।'



कलियुग की कौतुक कथा

शास्त्रों के अनुसार कलियुग की आयु 4 लाख 32 हजार वर्ष निर्धारित है। कलियुग का आरंभ महाभारत के उपरांत हुआ था, और अब तक कलियुग के 25 हजार वर्ष बीत चुके हैं। विगत जन्माष्टमी को कृष्ण जी का 25 हजारवाँ जन्मदिन था अर्थात् सहस्रवाँ रजत-जयंती दिवस। द्वापर के अवसान पर अपनी इहलीला समाप्त करने के बाद कृष्ण जी ने भारतवासियों की खोज-खबर लेना बंद कर दिया था और उन्हें अब न तो द्रौपदी के चीर की चिता सताती थी, न भूखी गायों की और न ब्रजबासिन गोपियों के अनवरत शाषण की। अपने अदम्य स्वभाव के अनुसार नारदमुनि अवश्य कभी-कभी पृथ्वी का चक्कर लगा जाते थे और कृष्ण जी को यहाँ के नवीन समाचारों एवं रीति-रिवाजों के बारे में बता दिया करते थे। उन्हीं ने कृष्ण जी के कान भर दिए थे कि भारत में रजत-जयंतियाँ धूमधाम से मनाने का नया शौक लोगों में पैदा हो गया है। कुछ दिन पहले उन्होंने कृष्ण जी को यह भी याद दिला दिया था कि इस बार उनकी सहस्रवीं रजत-जयंती पड़ रही है और मथुरावासियों की इसे बड़े धूमधाम से मनाने की योजना है। यह सुनकर कृष्ण जी का कौतुकी मन कुलबुलाने लगा और उन्होंने सोचा, इस बार कलियुग की कृष्णजन्माष्टमी के उत्सव का आनंद लिया जाए।

यह सोचकर कि जन्म का समय तो अर्धरात्रि का है, तो क्यों न पहले से पहुँचकर वर्तमान मथुरा को भी देख लिया जावे, हो सकता है कि वहाँ आधुनिक गोपियों के साथ रास-रंग का आनंद भी प्राप्त हो जाए।

कृष्ण जी सायंकाल होते ही अपने रेशमी स्वर्णाभूषण एव मोर-मुकुट धारण कर तथा हाथों में बॉसुरी लेकर मथुरा की एक चलताऊ सड़क पर प्रकट हो गए और मंद-मद मुस्कान के साथ आधुनिक मथुरा को साश्चर्य देखने लगे। उन्हें आशा थी कि मथुरावासी उन्हें पहचानकर आह्लादित हृदय से उनका स्वागत करने को दौड़ पड़ेंगे। पर हुआ वह कि उन्हें देखकर उनके चारों ओर लोग इकट्ठे तो होने लगे, पर उनके चेहरे पर किसी प्रकार का स्वागत-भाव आने के बजाय मसखरी का भाव दिखाई देता। उनमें खुसर-फुसर हांती कि जन्माष्टमी पर अच्छा बहुरूपिया बना है और फिर कुछ लोग कृष्ण जी के सामने अठन्नी-रुपैया डालकर आगे बढ़ जाते। भीड़ में एक-से-एक सुंदर गोपियाँ भी थीं। उनमें कुछ तो जीन्स-ब्लाउज पहने हुए इतनी गोरी थी, जितनी कृष्ण जी ने मथुरा वृदावन में कभी देखी भी नहीं थी। पर गोपियाँ भी कृष्ण जी की ओर ऐसे देखती जैसे लोग विदूषक को देखते हैं और कुछ देर बाद कुछ रुपए-पैसे उनके सामने फेंककर आगे बढ़ जातीं।

भीड़ के कारण सड़क पर ट्राफिक-जाम हो रहा था और ट्रक पर बैठे सरदार जी बार-बार हार्न बजाने के साथ-साथ चुनी हुई पंजाबी फुलझड़ियाँ भी मुँह से निकाल रहे थे। ट्राफिक-पुलिस का एक सिपाही सीटी बजाता हुआ आया और भीड़ को चीरता हुआ कृष्ण जी के पास आकर बड़बड़ाने लगा, 'चल हट बे बहुरूपिए। क्या अंधा है, जो दिखाई नहीं देता है कि सारा ट्राफिक रुक गया है? माँगना है तो किनारे खड़े होकर माँग।'

कृष्ण जी की समझ में आ गया कि अब तो मथुरा में आजकल की वेषभूषा में अपने को छिपाते हुए ही प्रकट होने में खैरियत है। अतः वह वहाँ से एक अँधेरी गली में एकांत की तलाश में खिसक लिए।

अपने 'प्रारंभिक स्वागत' से वह इतना घबरा गए थे कि उन्होंने सोचा कि अब जन्म के समय तो चुपचाप अपनी पहचान छिपाते हुए किसी निर्जन प्रवेश-मार्ग से महल में घुस जाएँगे और फिर भक्तों के बीच खड़े होकर उन्हीं में अपने को छिपाकर जन्मात्सव का अवलोकन करेंगे। अपने मुकुट एवं स्वर्णाभूषण को गिरवी रखकर उन्होंने एक धोती-कुर्ते

का जोड़ा खरीदा और उसे धारण कर अर्धरात्रि के निकट महल की ओर चल दिए। पर यह क्या, यहाँ तो पूरे महल के चारों ओर बैरीकेड लगाया हुआ था और स्थान-स्थान पर रायफलों से लैस पी.ए.सी. के सिपाही भी लग हुए थे। बैरीकेटिंग के चारों ओर चक्कर लगाने पर उनकी समझ में आया कि सबसे निर्जन मार्ग मस्जिद की तरफ से है और वहाँ पर ड्यूटी का सिपाही भी ऊँघ रहा है। सभवतः महीनों से बिछड़ी पत्नी की याद में स्वप्निल अवस्था में था। इसलिए वह वहाँ चुपचाप बैरीकेड पर चढ़कर अंदर कूद गए, पर दुर्भाग्य कि कूदने की धमक से सिपाही की नींद टूट गई और उसके मुँह से यकायक निकला, 'धम, कौन आता है, दोस्त या दुश्मन?' और उसने रायफल तान ली। कृष्ण जी ने सोचा कि अब अपना वास्तविक परिचय बता देने में ही भलाई है, नहीं तो पता नहीं वह कब रायफल की लिबलिवी दबा दे, अतः वह बोल पड़े, 'मैं हूँ तुम्हारा चिरसखा कृष्ण कन्हैया, जिसको तुम रोज लेते हो बलैया।'

ऐसी अटपटी बात सुनकर सिपाही अत्यंत-मशकित हो गया और उसने खतरे का अलार्म बजा दिया। बस फिर क्या था तमाम पुलिसवाले दौड़े आए और मैडल पाने की लालसा में उनमें होड़ लग गई कि इस विध्वंसक को मैं सबसे पहले पकड़ लूँ। उन्होंने कृष्ण जी को पकड़कर हथकड़ी पहना दी। कृष्ण जी ने अपने विषय में बताने और समझाने का प्रयत्न किया, परंतु प्रथमतः उनके द्वारा दिए जानेवाला परिचय अविश्वसनीय था और फिर उन्हें छोड़ देने पर मैडल व पुरस्कार बेकार में मारे जाते। इसलिए अर्धरात्रि से पाँच-सात मिनट पहले कृष्ण जी अपनी जन्म-जेल में बंद कर दिए गए। वहाँ एक पालना लटक रहा था, जो एक रेशमी शाल से ढका हुआ था। रात्रि के 12 बजते ही पुजारी ने वह शाल उठाया और सर्वत्र घंटे-घड़ियाल बज उठे। उसमें रखी कृष्ण की बालमूर्ति के दर्शन-पूजन को समस्त स्त्री-पुरुष व बच्चे व्याकुल होते रहे और बेचारे कृष्ण जी हाथ में हथकड़ी पहने पीछे से यह तमाशा देखते रहे। मूर्ति की पूजा-अर्चना समाप्त होने के बाद जब दर्शनार्थी चले गए और पुजारियों ने चढ़ावा हथियाकर जन्म-जेल का दरवाजा बंदकर ताला लगा दिया, तो हारे-थके कृष्ण सीलन-भरे जेल के ठंडे फर्श पर लेट गए। क्लान्त तन

और क्लात मन को निद्रादेवी ने अपनी शरण में ले लिया।

सबेरे नींद देर से खुली और नित्यक्रिया से निवृत्त होकर उन्हें जैसे ही इस स्थिति पर विचार करने की फुर्त मिली कि आगे पता नहीं क्या-क्या भुगतना है, वैसे ही एक पुलिसवाले ने पुजारी के साथ आकर उन्हें जेल से निकाला और कैदी-वाहन में बैठने का आदेश दिया। रास्ते में उसमें बैठे एक खूँखार में मुच्छड़ कैदी ने उनसे पूछा, 'कहाँ से आया है?'

कृष्ण जी ने सीधा-सा उत्तर दिया, 'ब्रह्मलोक सा।' वह मुच्छड़ क्रोध से लाल होकर कृष्ण जी को उनके इस उत्तर के लिए मजा चखान को तैयार हो ही रहा था कि पुलिसवालों ने पिछला दरवाजा खोलकर सबको उतरने को कहा। कृष्ण जी एक रोबदार मजिस्ट्रेट के सामने पेश किए गए। उसने पूछा, 'तोड़फोड़ करने आया था? कौन है तू, गमभक्त या कृष्णभक्त?'

कृष्ण जी ने सगर्व उत्तर दिया, 'मैं क्यों विध्वंस करूँ और क्यों बनूँ रामभक्त या कृष्णभक्त? समस्त ब्रह्मांड ही है मुझ पर आसक्त।'

मजिस्ट्रेट क्रोधित होकर बोला, 'सीधे बोल, जानता नहीं ला आफ कटेम्प्ट? वह भी लगा दूँगा। अपनी सफ़ाई में कोई गवाही पेश करना है?' कृष्ण जी ने निगाह उठाकर पहले कचहरी परिसर को देखा और फिर दिव्यदृष्टि से दूर-दूर तक देखा कि कहीं कोई नद, कोई यशोदा, कोई सखा अथवा कोई गांपिका नजर आ जाए, जो मजिस्ट्रेट को उनकी पहचान करा दे कि वही परमब्रह्म कृष्ण है परंतु उन्हें चारों ओर वस कस के वंशज नजर आए।

सफ़ाई की गवाही के अभाव में मजिस्ट्रेट ने कृष्ण जी को टाडा क अंतर्गत दंडित कर मथुरा जिला जेल भेज दिया। पता चला है कि निकट भविष्य में उनकी रिहाई की कोई संभावना नहीं है। मानवाधिकारवादियों से मेरी अपील है कि एक केस भगवान की स्वतंत्रता के अधिकार-हेतु भी निःशुल्क लड़ लें।



अँग्रेज-भोजी

भौजी का नाम मुनत वैसे ही देवरो के मुँह मे लड्डू फूटने लगे हैं और अगर भोजी अँग्रेज हा, तब तो सोने में सुहागा। हिंदुस्तान में ऐसे भाग्यशाली देवर कम ही हागे, जिन्हें अँग्रेज भौजी को पाने और अपने भाग्य पर इतराने का मौका मिला हो। मैं उन्ही चंद गिने-चुने देवरो में से एक हूँ।

हुआ यूँ कि जब मैं बी ए. में पढ रहा था तो बडे भैया इजीनियरिंग का कोर्स पास कर लदन चले गए थे, इंपीरियल कालेज आफ इजीनियरिंग में आगे की पढाई करने। मैंने भी माँ व पिता के साथ उन्हे एयरपोर्ट पर माला पहनाकर विदा किया था। सबकी आँखें नम हो गई थीं और माता ता कई दिन तक रोती रही थी। भैया हम सबको बड़ा प्यार करते थे और पहुँचते ही उन्होंने खतों की ऐसी झड़ी लगा दी थी कि उन सबका जवाब देना भी महँगा पडने लगा था। आखिर मुआ एयरोग्राम तक साढ़ छः रुपए का पडता था और लिफाफा भेजो तो पूरे ग्यारह रुपए साफ हो जाते थे। भैया के हर खत में नई-नई जगहों का वर्णन होता था। कभी हाइड पार्क की सर्पेटाइन और स्पीकर्स कार्नेर का, कभी वेस्टमिस्टर ऐबी का और कभी टेम्म नदी में टावर-ब्रिज के नीचे मे निकलते जहाजों का। उन खतों को पढकर मेरा मन ख्वाबी दुनिया मे खो जाता और अक्सर सोचना कि लदन जब इतना खूबसूरत है तो वहाँ की गोरी लड़कियाँ कैसी हसीन होगी। भैया अपन खतों मे कभी किसी लड़की का जिक्र नहीं करते थे। आखिर उनका हरेक खत घर मे हम सभी की मिस्तिक्यत होता था और

माता-पिता ऐसी बातें पढ़कर क्या सोचते। धीरे-धीरे भैया के खतों की रफ्तार कम हाने लगी और हम सब की साँस में माँ आई कि जवाब का खर्चा हमारी कुव्वत की हदों में रहेगा। पर कुछ दिनों बाद खतों की तादाद इतनी कम हो गई जैसे लदन से बैलगाड़ी स चलकर आते हो। और फिर तो पिता जी जब तीन-चार खतों में जवाब का इस्तरार करते, तभी एक जवाब आता और उसमें भी बस इस पर ज़ार रहता कि क्या बताए काम इतना बढ़ गया है कि वक्त ही नहीं मिलता। हम सब सोचते कि आखिर इंग्लैंड की पढाई है, मेहनत तो पडती ही हागी। अलबत्ता माँ जरूर कभी-कभी भैया की याद करती-करती कह बैठती, ऐसी भी क्या पढाई है कि चार अक्षर लिखने तक का वक्त नहीं मिलता। उनके मन में एक अनजानी दहशत-सी बैठती जा रही थी।

और तभी एक दिन धमाका हा गया। भैया का पिता जी क नाम खत आया कि क्रिसमस की छुट्टियों में वह घर आ रहे है। साथ में उनकी बहू स्टेला भी हागी। भैया ने लिखा था कि स्टेला बडी अच्छी लडकी है और घर में सब हांगो का उस देखकर बडी खुशी हागी। खत देखकर पिता जी जैसे सन्न रह गए। उन्होंने चुपचाप वह खत माँ का पकडा दिया और उसे पढ़कर माँ ने सर पीट लिया और घर सर पर उठा लिया कि पता नहीं किस जात की हागी, क्या वह चौके में भी घुसेगी, उसका बनाया खाना कैसे खाया जाएगा, आदि-आदि। बस मैं यह सब उछलकूद तमाशबीन की तरह देख रहा था, क्योंकि एक अँग्रेज़ लडकी क मेरी भौजी बनने की खुशी व घमंड से मैं फूला नहीं समा रहा था। मैं सोच रहा था कि कैसी हागी मेरी भौजी? बिलकुल गारी मम साहब-सी? क्या अँग्रेज़ भौजी भी देवर से हँसी-मजाक करती हागी? क्या इंग्लैंड में उनके घर जाकर, मैं भी वहाँ कोई नौकरी ढूँढ पाऊँगा? यहाँ, तो आर्ट्स साइड वालों को कोई नौकरी मिलती नहीं है। और हो सकता है कि वहाँ भौजी की कोई छोटी बहन हो और मेरी भी टिप्पस भिड जाए।

फिर भैया के खत में लिखे वाले दिन एक टैक्सी हमार घर के सामने आकर रुकी और उसमें से भैया और भौजी उतरे। भौजी का

दखकर हम सभी भौचक्के रह गए। गोरे बदन पर रेशमी साड़ी, माथे पर विदी, माँग म सिंदूर। भौजी ने आगे बढ़कर भैया से पहले ही माँ व पिताजी के पैर छुए और उन्होंने गद्गद् होकर आशीर्वाद दिया। मैं भौजी के पैर छुए तो उन्होंने 'हाय' भर कहा। फिर अदर जाकर भौजी न सवस पहले माँ के पूजा के कमरे में जाकर भगवान का माथा नवाया। माँ गद्गद् हा गई और उनके शको-शुवह काफूर हो गए। भौजी माँ की बात समझ तो नहीं पाती थीं पर अपनी क्लोज-अप मुस्कराहट से उनका दिल जीत लती थी। एक हफ्ते तक भौजी घर पर रही। इस बीच मेरे पैर भी जमीन पर नहीं पड़ते थे। भौजी थोड़े दिन को आई थी, इसलिए माँ ने उन्हें चोका-वर्तन नहीं करने दिया, परंतु माँ जब सोने जाती, तो भौजी उनके पैर दबाना न भूलती। माने स पहले मुझे भी गुड-नाइट अवश्य कहती। एक हफ्ता एक सपने की तरह गुजर गया और भौजी जिस रफ्तार से आई थी, उसी रफ्तार से लौट गई। हम सब उनकी तारीफ के पुल बाँधते अपने उसी पुराने मुहल्ले में रह गए। पड़ोस की रामकली चाची भी, जिनकी बहू का रंग मौँवला था और जो सबकी बहुओं में अवगुन ही दखा करती थी मरी भौजी के बारे में यह कहे बिना न रह सकी, 'बहू है तो क्रिस्तान लकिन हैं सुलच्छनी।'

भैया व भौजी के जाते समय माँ ने भौजी की नजर उतारी। भैया ने लंदन पहुँचकर जो खत भेजा उसमें लिखा कि भाभी को घर पर बहुत अच्छा लगा और वह अपने दवर को तो अक्सर याद करती है। यह अगले साल गर्मियाँ में फिर इडिया चलने को कह रही है। पढकर मरी बाँछे खिल गई। लेकिन कुछ दिनों बाद फिर भैया के खत आना कम होने लग आर धीरे-धीरे बिल्कुल बंद हो गए। माँ फिर दुखी रहने लगी और मैं अक्सर मन-ही-मन भौजी से शिकवा करने लगा कि ऐसी निष्ठुर हो गई कि वह भी कोई खत नहीं लिखती है। धीरे-धीरे गर्मी आ गई और इस बार भैया और भौजी तो नहीं आए, लेकिन लदन से पिताजी के दोस्त सिन्हा अंकल का लड़का जरूर अया। मैं भौजी के बारे में जानने को उतावला हो रहा था और दूसरे दिन ही उससे मिलने चला गया। उसस भैया और भौजी के बारे में पूछने पर पहले तो वह टालता रहा, पर मेरे

जिद करने पर बताया, 'क्या बताऊँ? मैंने तो बहुत ममझाया था लेकिन तुम्हारे भैया तो स्टेला के लिए आँधे मुँह गिर पड़े। वह इम्पीरियल कालेज में क्लीनर (महरी) का काम करती थी और उसके पहले स तीन-चार ब्वाय फ्रेंड थे, जो उससे केवल अपना मतलब गाँठत थे। स्टेला बातचीत में बहुत स्वीट थी और पहले ही दिन जब उसने तुम्हारे भैया से 'हाय, गुड मॉर्निंग' कहा, तो वह उस पर लट्टू हो गए। स्टेला इस खेल की मजी खिलाड़ी थी और भैया का सुनहला भविष्य देखकर उन्हें अपने जाल में फँसाती गई। जल्दबाजी में तुम्हारे भैया ने उससे शादी कर ली और उसे हिंदुस्तानी रीति-रिवाज सिखाने लगे, जिन्हें उसने नाटक के कलाकार की तरह तुरत सीख लिया और वह हिंदू पत्नी दिखन लगी। तभी तुम्हारे भाई उसे यहाँ ले आए थे।

यहाँ स लौटने के बाद स्टेला ने धीरे-धीरे अपना रंग दिखाना शुरू कर दिया। अपने पुराने चहेतों में ज्यादा वक्त बिताने लगी और तुम्हारे भैया को अपने इस्तेमाल की चीज़ समझती। तुम्हारे भैया उसे अपनी कमाई का सब पैसा दे देते थे और स्टेला उन्हें अपने एकाउंट में जमा करती रही थी। फिर एक दिन तुम्हारे भैया ने स्टेला को किसी अन्य के साथ आपात्तिजनक स्थिति में देखकर टोंका तो यह कहते हुए कि वह खरीदी हुई गुलाम नहीं है, अपना कपड़ा-पैसा-जवर लेकर चलती बनी। तुम्हारे भैया तब से टूट से गए हैं लेकिन मैंने तो पहले ही उन्हें समझाया था कि इंग्लैंड में यह कहावत मशहूर है कि अँग्रेजी मौसम और अँग्रेजी औरत का कोई भरोसा नहीं होता।



अध्यक्षता एक कविसम्मेलन की

अध्यक्ष बनने की ललक किसे नहीं होती और फिर कविसम्मेलन की अध्यक्षता का अर्थ होता है, बड़े-बड़े कवियों में सम्माननीय सम्झा जाना। फिर यह चाह अहिंसक भी है और वैध भी। इसलिए अपन दिल में भी चाह रहती थी कि कभी किसी कवि-सम्मेलन की अध्यक्षता करने का अवसर मिले। परंतु जब वर्षों तक किसी आयोजक ने अपने को इसका योग्य न समझा तो मैंने इस कहावत पर अमल करना होशियारी सम्झा कि बिना रोए तो बच्चे को माँ भी दूध नहीं पिलाती है और मित्रों के माध्यम से मैंने इशारतन यह बात आयोजकों को पहुँचानी शुरू कर दी कि अब मुझे बुलाना है तो अध्यक्ष बनाकर ही बुलाएँ। तभी एक दिन बाजार से भाजी खरीदकर लौटने पर मेरी धर्मपत्नी ने बताया कि घूरेपुर से एक सज्जन कवि-सम्मेलन की अध्यक्षता का निमंत्रण देने आए थे। आपको न मिलने पर शाम को फिर आने का कह गए हैं। मुनकर मेरी बाँछे खिल गई पर तभी शंका हुई कि कहीं वह सज्जन इस बीच अपना मन न बदल ल और वापस न चले जाएँ, इसलिए पत्नी को अधैर्यपूर्वक डाँटते हुए कहा, 'अरे, उन्हें आवभगत करके रोक भी तो सकती थीं? मैं कितनी देर के लिए बाजार गया था?' पत्नी समझदार हैं। वह मेरी उतावली खूब समझ रही थी इसलिए वह कोई उत्तर न देकर बस मुस्करा दीं। खैर, सायकाल वह सज्जन मेरी आशका के विपरीत फिर उपस्थित हुए और मुझसे अध्यक्षता-हेतु अनुरोध किया। यद्यपि कार्यक्रम के विषय में बातचीत करने पर मुझे आमंत्रित किया जा रहा है, परंतु मेरे द्वारा ऐसा

अवसर खोने का सवाल ही नहीं था और मैंने उन सज्जन पर अहसान-सा जताते हुए निमंत्रण मौ फ्रीमदी स्वीकार कर लिया। अपना सौजन्य भेट (महन्ताना) भी नहीं बताया।

बक्से से अपना एक मात्र कुर्ता व उसमें मिलता-जुलता पायजामा निकलवाकर उम्र पर कलफ़, प्रेस आदि करवाई, श्रोताओं को अच्छी लगनेवाली दो-तीन रचनाओं को कहने का पुनरभ्यास किया और इस तरह अध्यक्ष के रूप में अपना रग जमाने के सपनों में डूबते-उतरते कवि-सम्मेलन का दिन आ गया। मुझे सबेरे आठ बजे की रेलगाड़ी पकड़कर मडिहान पहुँचना था और वहाँ से बस द्वारा घूरेपुर पहुँचना था। रेलवे इन्क्वाइरी में पूछने पर पता चला कि गाड़ी राइट टाइम है और सबेरे-सबरे पत्नी द्वाग सफलता-हेतु प्रस्तुत किया गया दही और पेड़ा खाकर मैं रेलवे स्टेशन को रिवशे पर चल दिया। प्लेटफार्म पर पहुँचा तो घोषणा की जा रही थी कि मडिहान जानेवाली गाड़ी अपने निश्चित समय से 30 मिनट लेट प्लेटफार्म नं 5 पर आएगी। प्लेटफार्म पर चहलकदमी करना लगा, क्योंकि लकड़ी की खुरदरी बेंच पर बैठने से कुर्ते-पायजामे की क्रीज खराब होने का डर था। आठ बजकर 35 मिनट तक जब गाड़ी दूर-दूर तक न दिखाई दी, तो इन्क्वाइरी पर गया तो वहाँ लगी श्याम-पट्टिका पर लिखा जा रहा था कि मडिहान जानेवाली गाड़ी अपने निश्चित समय 1 घंटा 20 मिनट लेट प्लेटफार्म नम्बर 5 पर आएगी। यद्यपि ऐसे अवसरों पर अपने क्रोध व मुस्कराहट को पी जाना ही बुद्धिमानी होती है, परंतु आज मुझसे नहीं रहा गया और इन्क्वाइरी वाले से पूछ ही बैठा कि जब गाड़ी इतनी लेट है तो गाड़ी आने के 30 मिनट पहले तक राइट टाइम बताने की क्या तुक है? इन्क्वाइरी पर बैठा कर्मचारी आज कुछ खास अच्छे मूड में था, अतः गाली-गलौज पर उतरने के बजाय बोला, 'मैं क्या जानूँ! ट्रैफिक सुपरिंटेंडेंट से पूछो।' इतने में मुझे अक्ल आ गई कि इज्जत बचानी है तो चुपचाप प्रतीक्षा करो और मैं वहाँ से खिसक लिया। जब 9 बजकर 30 मिनट तक गाड़ी प्लेटफार्म नम्बर 5 पर नहीं आई और मेरी बेंचैनी फिर बढ़ने लगी, तो साहस कर एक सीधे में दिखनेवाले कुली में गाड़ी के बारे में पूछ लिया। वह फुरसत में था, धीरे से मुस्कराकर बोला, 'गाड़ी तो 15 मिनट

से 3 नवर प्लेटफारम पर ठाढी हैं। का सोवत ग्हाँ? मैं दौड़कर 3 नवर प्लेटफारम पर पहुँचा तो गाडी मीटी दकर खिसकने लगी थी। चलती गाडी मे डडे पर लटककर डिब्ब मे पहुँच तो गया पर वहाँ पाया कि एक पैर की चप्पल नदारद थी।

मडिहान पहुँचकर वस का टिकट की लाइन मं लग गया। उस दिन बडी भारी महालग थी और बस स्टेशन का दृश्य देखकर ऐसा लग रहा था कि यदि कोई उस दिन विवाह न कर सका तो जीवन-भर कुँआरा रह जाएगा। बडी कसरत-मशक्कत और दो बसं छोडने के बाद घूरेपुर की टिकट मिली। बस की जो बर्थ तीन सवारियों के लिए बनी थी, उसी पर बैठी चार सवारियों के बाद कडक्टर ने मुझे किनारे पर बिठा दिया। मै तीन इच खाली जगह पर डंड पकड़कर अधलटका-सा बैठ गया, उस पर भी मुझमे सटा आदमी बीच-बीच मे मुझ पर गुरांता रहा कि अपनी जगह पर ठीक से बैठो। रात 9 बजे जब मैं घूरपुर पहुँचा तो एक दर्शनीय वस्तु बन चुका था। कस्बे के बच्चे शायद सो चुके थे, नही तो पागल समझकर कंकड जरूर मारते और गाँव के सारे कुत्ते कवि-सम्मेलन का आनद लन पंडाल में जा बैठे थे, इसलिए उनके दौड़ने मे भी बच गया।

मै दिन-भर का लुटा-पिटा-सा कवि-सम्मेलन के पडाल की तरफ जाते हुए सोच रहा था कि डेढ घटा लेट आने का क्या बहाना बताऊँगा? मन मे यह शंका भी हो रही थी कि यह समझकर कि मैं नही आऊँगा किसी और को अध्यक्ष न बना दिया गया हो। पर जब पंडाल में पहुँचा तो पाया कि पडाल अभी तक मुझसे भी अधिक दयनीय हालत म था- कोई कुर्सियाँ रख रहा था, तो कोई लट्टू लगा रहा था और काई मच की धूल झाड़ रहा था। मेरे स्वागत मे आए आयोजक मरी हालत देखकर जितने भौंचक हो रहे थे, उतने ही अपने पंडाल की हालत देखकर सकुचित भी थे। वे मुझे मच पर बिठाकर जल्दी से कविता पाठ क आरभ की तैयारी में जुट गए। संभवतः वे अपने घरा से खा-पीकर आए थे, जिससे किसी को मेरे भोजन का ख़याल नहीं रहा था और अपने पेट मे चूहे उछल-कूद कर रहे थे।

आधा घटा बाद माँ सरस्वती की वदना से कविता-पाठ आरभ

हुआ। तब तक पडाल श्रोताओं से भरने लगा था और मंच पर कवि उसी तरह ठुँस गए थे जैसे आज की बस में सवारियाँ। पहल उदीयमान कवियों को पढ़ने का अवसर दिया गया। उनमें से अधिकतर ने कविता सुनाने में कम समय गँवाया, वरन अपनी तुच्छता बखानने और उस हेतु श्रोताओं से क्षमा माँगने में अधिक समय का सदुपयोग किया। उन्हें-सुनते-सुनते श्रोतागण जब इक्का-दुक्का उठने लगे तो सचालक ने सभी कवियों से केवल एक रचना पढ़ने का अनुरोध किया। परतु अब तक मंजं हुए कवि कविता पढ़ने आने लगे थे और उन्हें एक से अधिक कविता पढ़ने के अनेक नुस्खे आते थे। कभी कविता से पूर्व कुछ मुक्तक पढ़कर अथवा कभी अपने किसी नवीन प्रयोग का श्रोताओं से परिचय कराकर। हास्यरस के कवि स्वर अथवा शब्दों का प्रयोग कम करते थे वरन् अपने भोड अग-संचालन से श्रोताओं को प्रभावित करने का अधिक प्रयत्न करते थे, जिससे एक ही कविता पूरी होने में तीन कविताओं का समय ले लती थी।

कवयित्रियाँ ऐसी लय और ताल के साथ अपनी कविताओं की पक्तियों को दुहराती-तिहराती थीं कि कम-से-कम दो कविताएँ कहने का समय एक ही गीत में लग जाए। इस प्रकार धीरे-धीरे श्रोतागणों का धैर्य समाप्त होने लगा और हर कवि की कविता समाप्त होते ही ढेर के ढेर श्रोतागण उठने लगे। पंडाल में वे ही बच जाते थे, जो उम्र दौरान सा रहे होते थे। धीरे-धीरे पडाल खाली लगने लगा। फिर नंबर आया सचालक महोदय और शीर्ष कवियों का। उनको टोकनेवाला कौन था? इसका परिणाम यह हुआ कि अपना नंबर आते-आते पडाल में गिने-चुने लाग ही रह गए। अधिकतर कवि भी अपनी कविता सुनाने के बाद कोई-न-काई वहाना बनाकर खिसक लिए थे। अंत में मेरा नंबर आने पर मैंने देखा कि अब केवल कविता के वास्तविक प्रेमी छः-सात श्रोता ही पडाल में रह गए हैं, अतः अपनी विद्वत्ता का झडा गाड़ने-हेतु एक क्लिष्ट साहित्यिक कविता सुना डाली। कविता समाप्त होने पर श्रोताओं ने जब किसी प्रकार की प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की तो मैंने आयोजक महोदय से पूछ लिया, 'क्या मेरी कविता ऐसी थी कि विद्वान व्यक्ति भी समझ न

सकें।' इस पर उन्होंने विनम्रतापूर्वक परंतु मुस्करात हुए उत्तर दिया, 'आपकी कविता इन लोगों की समझ में कैसे आती? य तो केवल वे लोग बचे थे, जिन्हें कवि-सम्मेलन समाप्त होते ही दरी-कनात उठाकर ले जाने थे।'

मैं कवि-सम्मेलन की ऐसी अध्यक्षता से भर पाया। अब कोई मुझसे अध्यक्षता करवा ले तो जानूँ।



जन्मसिद्ध अधिकार

एक पाश्चात्य विद्वान के अनुसार मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज मनुष्य को कतिपय लिखित अथवा अलिखित अधिकार देता है और साथ ही उसके लिए कतिपय कर्त्तव्य भी निर्धारित करता है। एक दूसरे पाश्चात्य विद्वान ने मनुष्य के कतिपय जन्मसिद्ध अधिकार भी गिनाए हैं जैसे जीवन का अधिकार। ऐसा प्रतीत होता है कि इन दोनों पाश्चात्य विद्वानों को अपने जीवन में कभी भारत आने का अवसर नहीं मिला था, क्योंकि उनके द्वारा बताए गए मानवीय अधिकारों की संख्या सकुचित एवं सीमित है और इनको पढ़कर भारतीय विद्यालयों का कोई भी छात्र (अथवा छात्रा) इन पाश्चात्य समाजशास्त्रियों के सीमित ज्ञान पर आश्चर्यचकित हो सकता है, क्योंकि भारतीयों को तो अनेकों ऐसे अतिगिक्त जन्मसिद्ध एवं पुरुषार्थसिद्ध अधिकार प्राप्त हैं, जिनकी पाश्चात्य विद्वान कल्पना भी नहीं कर सकते हैं।

भारतीय अपनी परंपराओं, विचारों एवं आस्थाओं से उदार प्रकृति के व्यक्ति हैं, अतः उन्होंने अपने अधिकतर अधिकार 'जन्मसिद्ध' की श्रेणी में रखे हैं, जिससे उन पर बहस-मुबाहिसे की गुंजाइश ही न रहे। उनके ये अधिकार अनगिनत हैं और उनका उपभोग करने हेतु उन्हें किसी कोर्ट-कचहरी की मदद की आवश्यकता नहीं होती है। इतनी लंबी प्रक्रिया में पड़ने की नौबत आए तो अधिकार अधिकार ही क्या हैं? जब अधिकार है तो उसका उपभोग करने के लिए बस भुजबल, धनबल अथवा जनबल की उपलब्धता ही पर्याप्त होनी चाहिए।

‘ढोल, गँवार, सूद्र, पसु, नारी, य सब ताड़न के अधिकारी’ हमारी सामाजिक मान्यताओं का मूल-मंत्र है-अर्थात् यदि कोई निरीह एव वेजुबान है ता उसे प्रताडना देने का जन्मसिद्ध अधिकार अन्योँ को प्राप्त हे। इस अधिकार का सदुपयोग बाप अपने बच्चों पर, पति अपनी पत्नी पर, सास अपनी बहू पर, बेटे अपने अशक्त व बूढे माँ-वाप पर, शक्तिशाली निर्बल पर और बहुसंख्यक अल्पसंख्यक पर करने में यदा-कदा ही चूकते हैं।

इस विषय में हमारी सामाजिक एव प्रशासकीय व्यवस्था पूर्णतः चुस्त-दुरुस्त हैं और साधारणतः आपके इन अधिकारों मे खलल डालने से दूर ही रहती है वरन् प्रायः आप द्वारा उनका खुला उपभोग करने मे आपकी सहायता ही करती है। यदि आपको मेरे द्वारा उद्घाटित इन तथ्यो पर कोई शक हो तो आज घर लौटकर अपनी पत्नी की धुनाई कर दीजिए। पत्नी के भय और पीडा से चिल्लाने की आवाज पर पडासी यह सोचकर चुप्पी मार जाएँगे कि पति-पत्नी का मामला है, हम क्यो बीच म पड़ें और यदि पत्नी आपके विरुद्ध रिपोर्ट लिखाने थाने चली गई तो पहले तो अपनी ही फ़जीहत कराके लौट आएगी। यदि किसी जोरू क गुलाम’ टाइप थानाध्यक्ष ने उसकी रिपोर्ट लिख भी ली, तो भी आप सौ फीसदी निश्चित सो सकते हैं, क्योकि जाँच करनेवाला अधिकारी उसे फाहिशा (अनियंत्रित चरित्र की) घोषित कर आपके पक्ष मे ही रिपोर्ट लगाएगा।

हमने अपनी स्वतंत्रता बडे बलिदानो के बाद प्राप्त की है और हम अपनी दिनचर्या के दौरान अपनी स्वतंत्रता मे किसी प्रकार की दखलंदाजी बरदाश्त नहीं करते हैं, जैसे यदि आप बच्चो और महिलाओ से भरी हुई गली के किनारे अथवा स्कूल की दीवाल की ओर मुँह करके पैट कं बटन खोलकर लघुशंका-निवृत्ति का सुख प्राप्त कर रहे है और कोई सिरफिरा आप द्वारा अपन इस आनंद को जनसाधारण में निःशुल्क बॉटन पर आपत्ति कर दे, तो आपको उसे गरिया अथवा चपतिया देने का पूर्ण अधिकार है। आप आश्वस्त रहें कि आस-पास के तमाशबीन आपके इस छोटे-से आनंद-आबंटन के कार्य मे आपत्ति उठाने-हेतु उसी व्यक्ति की

लानत-मलानत करेंगे, बशर्ते वह व्यक्ति देखने में आपसे अधिक संभ्रांत न लगता हो।

हम सभी जानते हैं कि इस देश में वैभव, यश एवं राजनीतिक प्रतिष्ठा कमाने की जन्मजात महत्त्वाकांक्षा रखनेवाले किसी भी व्यक्ति का घूसखोरी, हत्या एवं अपहरण में लिप्त होने का सर्वमान्य अधिकार बनता है। हमारी व्यवस्था नागरिकों के इस अधिकार की रक्षा-हेतु निशि-दिन जागरूक रहती है। अगर आप हत्या करने के अपने अधिकार का उपभोग दिल्ली में करते हैं तो मणिपुर जाकर छुट्टा घूमने का आदेश प्राप्त करने का अधिकार आपका बनता है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि हम आगामी शताब्दी में अंतर्राष्ट्रीय संस्थानों (जैसे आई.सी.जे., हेग) से भी छुट्टा घूमने के आदेश प्राप्त करने के अपने अधिकार को प्राप्त करने में सफल हो सकेंगे।

सरकारी नौकरी प्राप्त करने के विषय में भी आपके बड़े व्यापक अधिकार हैं। वस आपके रिसोर्सेज का स्तर पर्याप्त ऊँचा होना चाहिए। इस विषय को स्पष्ट करने के लिए एक अदना-सा उदाहरण प्रस्तुत कर रहा हूँ। एक बार एक पुलिस कांसटेबिल के पद का अभ्यर्थी जनपद सीतापुर में पुलिस द्वारा नाप-जोख में निम्नस्तर का पाए जाने के कारण चयन-परीक्षा में नहीं बैठने दिया गया। परीक्षा समाप्त होने के बाद उसने मुख्य चिकित्साधिकारी, लखनऊ (मुख्य चिकित्साधिकारी, सीतापुर नहीं) से प्रमाण-पत्र प्राप्त कर लिया कि उनकी नाप-जोख निर्धारित मानक के अनुसार सही है। इस प्रमाण-पत्र के आधार पर अपने अधिकार का उपयोग करते हुए उसने आदेश प्राप्त कर लिया कि चूँकि मुख्य चिकित्साधिकारी, लखनऊ की नाप के अनुसार यह अभ्यर्थी उपयुक्त है और नियमों के अनुसार मुख्य चिकित्साधिकारी द्वारा की गई नाप ही (पुलिस द्वारा की गई नाप नहीं) मान्य है और चूँकि वह चयन-परीक्षा समाप्त हो चुकी है, जिसमें इसे बैठना था, अतः इस अभ्यर्थी को बिना चयन-परीक्षा में सम्मिलित हुए भी पुलिस कांसटेबिल नियुक्त किया जावे। यह तो छोटी नौकरी की बात है। यदि आप अपने अधिकारों के प्रति सजग हैं तो बड़े-बड़े ओहदे वाली नौकरियाँ भी प्राप्त कर सकते हैं।

मान लीजिए आपने थर्ड डिवीजन में इंटरमीडिएट पास किया है और प्री-मेडिकल टैस्ट में चुना जाना आपके लिए संभव नहीं है तो चुपचाप मिथिला, भागलपुर, मनीपाल या बेलगाँव के किसी असली या नकली मेडिकल कालेज में भर्ती हो जाइए। एक वर्ष बाद अपने अधिकार के समुचित उपयोग से आप दिल्ली या लखनऊ के किसी भी नामी कालेज में अपने स्थानान्तरण का आदेश प्राप्त कर सकते हैं। फिर फेल-फाल होते हुए भी अगले चार वर्ष बाद आपको अपनी अज्ञानता के फलस्वरूप मानव-हत्या करने का अधिकार प्राप्त हो जाएगा और एक कमाऊ नौकरी भी मिल जाएगी।

इस देश की पुरानी पीढ़ी के लोगो के लिए सबसे अधिक संतोष एव प्रसन्नता का विषय यह है कि देश के विद्यालयों में पढ़नेवाले छात्र अपने अधिकारो के प्रति न केवल जागरूक हैं वरन् उनका सदुपयोग बड़ी मुस्तैदी से करते हैं। परीक्षा में नकल करना उनका जन्मसिद्ध अधिकार है। यह बात व न केवल जानते हैं वरन् अपने शिक्षकों और अन्य अज्ञानी व्यक्तियों के ज्ञानवर्धन हेतु विद्यालयो की दीवारों में यह मंत्र-वाक्य जगह-जगह पेट भी करते रहते हैं। इस अधिकार की प्राप्ति के मार्ग में बाधक शिक्षकों को सन्मार्ग पर लाने हेतु वे हडताल, गाली-गलौज, धौल-धप्पा अथवा आवश्यकतानुसार छुरीबाजी या बमबाजी जैसी सामान्य विधाओं का प्रयोग करते हैं। मेरे एक शिक्षक मित्र ने इस विषय पर एक बड़ी शिक्षाप्रद घटना सुनाई थी। उस समय वह नए-नए शिक्षक नियुक्त हुए थे और आदर्शवादिता के घुन ने उनके मस्तिष्क को अभी तक कुरेदना बंद नहीं किया था। परीक्षा में पर्यवेक्षक की ड्यूटी देते हुए उन्होने सख्ती से सभी छात्रों द्वारा नकल हेतु लाई गई किताबें व कापियो उनसे छीनकर अलग रख दीं। बस फिर क्या था, सभी परीक्षार्थी 'नकल हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' का नारा लगाते हुए कमरे से बाहर निकल गए और प्रधानाचार्य का घेराव कर दिया कि इस पर्यवेक्षक को कमरे से निकाला जाए। प्रधानाचार्य अनुभवी व्यक्ति थे और छात्रों के जन्मसिद्ध अधिकार का हनन करने की न उनमें इच्छा थी और न सामर्थ्य। उन्होने तुरत मेरे मित्र को कमरे से बुलाकर स्टाफरूम में बिठलवा दिया।

परीक्षार्थी अपनी जीत पर प्रमत्त होकर अपनी किताबें व कापियाँ लेकर परीक्षा-कक्ष में चले गए। लगभग पंद्रह मिनट बाद वही छात्र फिर प्रधानाचार्य के कमरे में घुस आए और नकल के जन्मसिद्ध अधिकार का नारा लगाने लगे। प्रधानाचार्य ने पूछा कि अब तुम्हें कौन रोक रहा है। इस पर वे बोले, 'पर हम नकल करें कैसे? आपने किसी ऐसे अध्यापक को हमारे कमरे में ड्यूटी पर लगाया ही नहीं है, जो हमें बताए कि अमुक प्रश्न का उत्तर किस किताब के किस पृष्ठ पर है।' अनुभवी एव समझदार प्रधानाचार्य ने तुरंत ऐसे उदारमना अध्यापक की उस कमरे में पर्यवेक्षण हेतु ड्यूटी लगाकर परीक्षार्थियों के अधिकारों की रक्षा का समुचित प्रबंध कर दिया।

हमने असंगठित, निर्धन, निर्बल और निम्न सामाजिक स्तर के व्यक्तियों को भी अनेक मौलिक अधिकार दिए हैं। जैसे शोषण किए जान का अधिकार, अशिक्षा का अधिकार, भूख का अधिकार एव मारपीट, बलात्कार अथवा अपनी हत्या कराने का अधिकार। हम चौकस भी रहते हैं कि ये लोग अपने इन अधिकारों का उपयोग करने में कहीं चूक न जाएँ।

मुझे पूर्ण आशा है कि नई शताब्दी में हम अपने इन अधिकारों में वृद्धि करके अपने को और अधिक अधिकारग्रस्त कर लेंगे। अभी तक हम अपने लिए केवल जन्मसिद्ध अधिकार ही बना पाए हैं। आगे जन्म-जन्मांतर के अधिकार बना लेने की इस देशवासियों की क्षमता के प्रति मैं आश्वस्त हूँ।



सरदार जी का बगीचा

मैं अपनी पत्नी नीरजा के साथ देवर्षि द्विवेदी के यहाँ रात में पहुँचा था। जो गोदरेज सोप्स लिमिटेड मुंबई में काम करता है और कंपनी द्वारा निर्मित गोदरेज हिलसाइड आफिसर्स कालोनी के सी-ब्लॉक के भूतल के एक फ्लैट में रहता है। सुबह जागने पर बड़ा खुशनुमा दृश्य देखने को मिला। मैं बालकनी में आकर खड़ा हुआ तो देवर्षि व उमकी पत्नी अनामिका भी आकर खड़ी हो गईं। बालकनी के बाईं ओर घना वन था, जिसे देखकर देवर्षि ने कहा कि मैंने अपने फ्लैट का नाम फारेस्ट-व्यू फ्लैट रखा है। बालकनी के सामने एक सुंदर-सा घास का लान था। लान के अंत में पाँच मजिला डी ब्लॉक स्थित था और उसकी दीवाल के किनारे सीजनल फूलों के पौधे पुष्पित हो रहे थे। उन्हीं में दो पपीते के पेड़ व दो नारियल के पेड़ भी लगे हुए थे। नारियल के पेड़ पर लदे हुए नारियलों को देखकर नीरजा ने कहा, 'अहा, पेड़ से तोड़कर नारियल का पानी पिया जाए, कैसा मज़ा आएगा।'

इस पर अनामिका उन्हें सावधान करते हुए बोली, 'अरे, ऐसी बात करिएगा भी नहीं। कहीं सरदार जी ने सुन लिया तो आफत आ जाएगी।'

हम दोनों समझे कि यह सरदारों पर बनाया गया कोई चलताऊ जोक (व्यंग्य) होगा और अनामिका की ओर इस तरह देखने लगे कि वह इसकी व्याख्या करे। इस पर वह बोली, 'हम लोग गत सप्ताह जब इस फ्लैट में आए थे, तभी पड़ोसियों ने हमें सावधान कर दिया था कि लॉन में फूलों को कभी तोड़ने या उन्हें देर तक देखने की गुस्ताखी मत करना नहीं तो सरदार

पहले बना था और भूतल का एक फ्लैट गोदरेज कंपनी में काम करनेवाले इन सरदार जी को आवंटित हुआ था। सरदार जी आर्मी में गार्ड सर्विस कमीशन में आफिसर रह चुके हैं और अत्यंत अनुशासनप्रिय हैं। उन्हें फूल-पौधों से बहुत लगाव है। उनके फ्लैट से सटी काफी जमीन खाली पड़ी थी और सरदार जी ने मेहनत कर उसमें खूब फूल, पौधे व नारियल, पपीते के पेड़ लगाकर सुंदर बगीचा बना दिया था। सरदार जी कंपनी के काम के अलावा शेष समय इसी उपवन को देते रहते हैं। उन्हें कतई गवारा नहीं हुआ है कि कोई व्यक्ति उनके बगीचे से फल-फूल तोड़ ले या उन्हें तोड़ने-जैसी निगाहों से देखे भी। दो वर्ष पहले जब यह सी ब्लॉक बनना शुरू हुआ तो कंपनी ने सरदार जी से बगीचा खाली करने को कहा, क्योंकि उसी जगह पर ईंट, गारा, सीमेंट आदि रखकर यह ब्लॉक बनना था। सरदार जी अड़ गए कि वह अपने लगाए बगीचे को बिल्कुल नष्ट नहीं होने दगे। कंपनी के अधिकारी इससे बहुत क्रोधित हो गए और सरदार जी की नौकरी पर बन आई थी परंतु सरदार जी को जानने वाले कुछ अन्य अधिकारियों की सिफारिश पर कंपनीवालों ने सरदार जी की नौकरी तो नहीं ली, लेकिन उन्हें उसी ब्लॉक में भूतल से तृतीय तल के फ्लैट पर शिफ्ट कर दिया और बगीचे की जमीन पर ईंट-पत्थर डालकर यह सी-ब्लॉक बनवाना आरंभ कर दिया। सरदार जी बगीचे को उजड़ते देखकर कई दिन रोते देख गए थे और एक सप्ताह तक छुट्टी पर रहे थे एवं उन्होंने ठेकेदार व मजदूरों को समझाबुझाकर अपने ब्लॉक के भवन से सटी हुई लगभग दो गज जमीन में लगे बगीचे को नष्ट होने से बचा लिया था। इसमें लगे दो पपीते व दो नारियल के पेड़ भी बच गए हैं। सी-ब्लॉक के निर्माण के उपरान्त दोनों ब्लॉकों के बीच की जमीन पर, जिस पर पहले सरदार जी का कब्जा था कंपनी ने घास लगवाकर लॉन बना दिया है। यद्यपि सरदार जी अब तीसरी मंजिल के फ्लैट में रहते हैं, परंतु अब भी घास के इस लॉन व बचे हुए बगीचे पर अपना अधिकार मानते हैं। सरदार जी रोज इसमें माली का काम करते हैं और अपने फ्लैट के कमरे की खिड़की से इसकी निगरानी करते रहते हैं।

अनामिका का अंतिम वाक्य सुनकर हमें हँसी आ गई और मैं बाल

पड़ा, 'वह सरदार जी है, तो बात को इतना न बढ़ाओ। अब जब वह ऊपर रहने लग हैं तो क्या निगरानी करते होंगे।'

इस पर देवर्षि जल्दी से बोल पड़े, 'अरे अनामिका असली बात तो वताना ही भूल गई। एक वार सरदार जी ने पाया कि रोज़ उनके बगीचे के कुछ फूल रात्रि में कोई तोड़ ले जाता है। उन्होंने कई दिना तक अपनी गिड़की में रात्रि में झाँक-झाँककर चोर को पकड़ने का प्रयत्न किया परंतु सफलता नहीं मिली, तो एक रात में सोने के बजाय वह भूतल की बालकनी के किनारे कुर्मी डालकर बैठ गए। गर्मी अधिक लगने पर उन्होंने अन्य कपड़े उतार दिए और सिर्फ कच्छा पहने रहे तथा अपनी पगड़ी खोल ली और सर व दाढ़ी दोनों के बाल फहरा लिए। सबरे लगभग 4 बजे चोर आया और रोज की तरह निर्भय होकर फूल तोड़न लगा, तो सरदार जी चुपचाप उसे पकड़ने को पास आने लगे। तभी आहट से उसकी निगाह ऊपर गई तो वह समझा कि भूत आ गया है और वह ताडे हुए फूल व अपनी टांकरी छोड़कर भागा। सरदार जी ने पीछे से दौड़ा तो वह भूत-भूत चिल्लाता हुआ कालोनी के मुख्य द्वार से निकल गया। वहाँ पर ऊँघते चौकीदार ने आँखे मलते हुए जब अधनगे सरदार जी को दौड़कर आते देखा तो वह बेहोश हो गया।

इस घटना के बाद कभी किसी ने सरदार जी के फूल तोड़न की हिम्मत नहीं की है। हम लोग यह सब सुनकर हँस रहे थे। फिर तैयार होकर हम चारो लोग बंबई की प्रसिद्ध एलीफैंटा केव्ज़ देखने चले गए। सायकल जब वापस आए तो किचेन में बाई खाना बना रही थी। वहाँ चार बड़े-बड़े नारियल रखे थे। बाई ने बताया- ये नारियल सरदार जी ने अपने बगीचे से तोड़कर भेजे हैं।'

हमें आश्चर्यचकित होते देख बाई कहने लगी- 'आप अभी इस फ्लैट में नए आए हैं, इसलिए आपको पता नहीं कि हर फ्लैट में मेहमानों के आने पर सरदार जी अपने बगीचे से नारियल, पपीते आदि, जो भी उपलब्ध हो, भेजते हैं।'

हम अवाक् एवं आह्लादित थे।



घाघ

आप शायद सोचें कि मैं बड़ा घाघ हूँ, अच्छा हास्य-व्यंग्य लिखना नहीं आता है तो घाघ पुराण ही लिखने लगा। पर बात ऐसी नहीं है। बात यूनै है कि मैं एक अधिकारी हूँ, जो घाघहीनता के कारण महत्त्वहीन स्थान पर नियुक्त है; परंतु जब भी कोई महत्त्वपूर्ण कुर्सी खाली होती है ता कुछ लोग उम्क संभावित भरनेवालों मे मेरा नाम भी उछाल देते हैं, बस फिर कई कनिष्ठ अधिकारी मेरी पूछताछ भी आरभ कर देते हैं। ऐसा ही एक अवसर आने पर कुछ लोग पहली बार मेरा हाल (आशीर्वाद) लेने चले आए थे तो मेरी पत्नी न हँसते हुए मुझसे कहा था कुछ लोग बड़े घाघ होते हैं।' हर भोंडा एव कानों मे चुभनेवाला शब्द मेरे मस्तिष्क में घर कर जाता है और उमे अथवा उम्के तत्सम शब्दों को बार-बार दोहराने और उन पद विचार करने को मजबूर करता रहता है और आप भी मानेगे कि 'घाघ' शब्द चाहे कर्णकटु न हो; परंतु भोंडा अवश्य है। अतः पत्नी की बात मुनकर मेरे मस्तिष्क मे 'घाघ' शब्द चरखी के समान घूमने लगा, और उस त्रासदी से मुक्ति पाने-हेतु मैंने यह 'घाघ पुराण' लिखना आरंभ कर दिया, जिमको पढ़ना शायद आपकी अपनी त्रासदी साबित हो।

'घाघ' शब्द की व्युत्पत्ति का इतिहास मुझे ढूँढने पर भी नहीं मिल पाया है। मैंने हिदी व सस्कृत भाषा के विद्वानो से जब इस विषय मे पूछा, तो वे केवल इतना कह पाए, 'बड़े घाघ हो, मेरी परीक्षा ले रहे हो?' मैं समझ गया कि वे सचमुच घाघ है। अपनी अज्ञानता पर पर्दा डालने का सटीक तरीका ढूँढा है।

मैंने यह शब्द सर्वप्रथम तब सुना था, जब कक्षा छह में कृषि-विज्ञान विषय में 'घाघ' कवि की कृषि पर लिखी कविताएँ पढ़ाई गयी थीं। मेरे घर में इस शब्द का प्रयोग नहीं होता था, क्योंकि शायद मेरे घर में कोई घाघ नहीं था। नहीं तो कृषि की कक्षा में सुना हुआ यह शब्द इतना अजीब न लगता और मेरे मस्तिष्क पर ऐसा स्थायी प्रभाव न छोड़ता कि आगे चलकर पूरा देश घाघमय लगने लगता। मुझे उस समय 'घाघ' शब्द न तो बोलने में जिह्वाप्रिय लगा था और न सुनने में कर्णप्रिय। इसलिए अपनी आदत के अनुसार यह अनोखा शब्द सुनते ही मेरा मस्तिष्क उमकी अक्षरिक व्याख्या करने लगा था। पहले तो मैंने सोचा था कि इन कवि महोदय के पिता घामड-घमियारे रहे होंगे, या घायल घड़ीसाज भी हो सकते हैं, और अपना नाम बेटे के द्वारा चलाते रहने के उद्देश्य से उसका नाम संक्षेप में 'घाघ' रख दिया होगा। पर मेरे कृषि अध्यापक ने जब यह बताया कि यह तखल्लुस (उपनाम) तो कवि महोदय ने स्वयं चुनकर रखा था तो मुझे लगा था कि कवि महोदय अवश्य घाघ रहे होंगे- नहीं तो भला ऐसा बंतुका नाम रखने की क्या आवश्यकता थी। फिर कक्षा में उनकी कविता पढ़ाई गई। कदम-कदम पर बाजरा, मेढक कूदे 'ज्वार' यानी बाजरा को एक-एक कदम दूरी पर बाँओ और ज्वार के पौधों में इतनी दूरी हो कि उसमें मेढक कूद सकें, तो मैं समझ गया कि जरूर मेढक के गुणों की याद आने पर कवि महोदय ने अपना नाम घाघ रख लिया होगा। मेढक भी बड़ा घाघ होता है। जाड़ा आया कि जमीन के अंदर 'हाइबरनेशन' में चला गया और खाने-पीने और रजाई ओढ़ने की छुट्टी, और जहाँ गर्मी आई और ज्वार बोया गया कि उसमें कदम-कदम पर कूदना शुरू। 'घाघ' कवि का ज़माना अँग्रेजों का ज़माना था, इसलिए यह नहीं हो सकता कि उन्होंने नेताओं को देखकर अपना उपनाम घाघ रखा हो। यदि आज का ज़माना होता तो मैं इस बात पर शर्त लगा सकता था कि उन्होंने मेढक के गुणों को देखकर अपना नाम घाघ नहीं रखा था वरन् नेताओं के गुणों को देखकर अपना नाम घाघ रखा था। जहाँ चुनावी घोषणा हुई कि नेता लोग अपने-अपने क्षेत्रों में गाजे-बाजे के साथ सदल-बल दिखाई देने लगते हैं और चुनाव समाप्त होने पर अपनी एक

महीने की मेहनत को पाँच साल तक भुनाने को गायब हो जाते हैं। वे निजी लाभ की सभावित परिस्थितियों पर मदेव घाघ-दृष्टि रखते हैं। लो 'घाघ पुगण' लिखते-लिखते गृद्ध-दृष्टि से बेहतर शब्द दिव्य 'घाघ-दृष्टि' का आविष्कार हो गया।

'घाघ' शब्द का अर्थ शायद ही किसी शब्द कोश में मिले, और यदि कहीं मिल भी गया तो वह इस शब्द को अपने सपूर्ण आयामों एवं वितानों में परिभाषित नहीं कर पाया गया होगा। परंतु घाघ मुझे जीवन के समस्त क्षेत्रों व पहलुओं में मिलते रहें हैं। अनुभव से मैंने समझा है कि घाघ वह है, जो स्वार्थ की बात मोचने एवं उसकी प्राप्ति-हेतु योजनाबद्ध रूप से उपाय करने तथा स्वार्थसिद्धि के उपरांत अनावश्यक हो जाने पर साधन को निःसंकाच त्याग देने में माहिर हो। परंतु सब घाघ एक जैसे नहीं होते हैं। उनमें अनेक जातियाँ एवं गोत्र होते हैं, और कुछ अग्रणी घाघ होते हैं और कुछ पिछड़े घाघ। परंतु जहाँ तक मेरा ज्ञान है, उनमें अभी तक आरक्षण-व्यवस्था लागू नहीं है, अतः बड़े-बड़े नामी घाघों की सताने कभी-कभी बड़ी सीधी-सादी (घाघ का विलोम) हो जाती हैं और बड़े-बड़े वीतरागियों की सताने कभी बड़ी घाघ निकलती हैं। सभी जातियों एवं गोत्रों का वर्णन दे पाना इस लघु पुराण में संभव नहीं है, अतः केवल प्रमुख वर्गों के नाम व गुण यहाँ दिए जाते हैं:

1. लेटेंट घाघ—वे घाघ हैं, जिनमें 'घाघियत' साधारणतः छिपी रहती है; परंतु उचित परिस्थितियों उत्पन्न होने पर उभर आती है। इस व्यक्ति समाज के लिए खतरनाक नहीं है वरन् समाज स्वयं कभी-कभी उन्हें घाघ होने पर मजबूर कर देता है।

2. पेटेंट घाघ—वे घाघ हैं, जो घाघियत को अपना पेशा बना चुके हैं और इसके लिए ख्याति-प्राप्त हैं। चूँकि ऐसे घाघ जाने-माने होते हैं, अतः यदि कोई व्यक्ति चाहें तो उनसे सावधान रह सकता है, परंतु फिर भी प्रायः ऐसे घाघ अपना उल्लू साधने में सफल हो जाते हैं।

3. इटेलीजेंट घाघ—वे घाघ हैं, जो अपना उल्लू ऐसी सफाई से सीधा करते हैं कि उल्लू बननेवाला व्यक्ति समझ नहीं पाता है कि वह किसी घाघ के चंगुल में है।

4 ब्लेंटेड घाघ—वे घाघ है, जो प्रथम मुलाकात में ही स्पष्ट कर देते हैं कि वे घाघ है और बाद में ज्यादा बदनाम हैं।

5 जेनेटिक घाघ—इन व्यक्तियों के जीन्स स्वयं ही घाघ होते हैं। इनके जीन्स डार्विन के 'सर्वाइवल आफ फिट्टेस्ट' के सिद्धांत को पूर्णतः आत्मसात किए हुए होते हैं। इन व्यक्तियों का घाघ बनना इनकी मजबूरी होती है।

6 एक्वायर्ड घाघ—इन व्यक्तियों के जीन्स स्वयं में घाघ नहीं होते हैं परंतु बचपन से ही घाघों के बीच पलने के कारण ये व्यक्ति घाघ बन जाते हैं।

एक शोध के अनुसार आजकल पेंटेंट और इटलीजेट घाघों की संख्या तेजी से बढ़ रही है।

आजकल इस विषय में राजनीतिक क्षेत्रों में गंभीर बहस चल रही है कि घाघों को 'फारवर्ड' 'बैकवर्ड' एवं 'शेड्यूल्ड' वर्गों में बाँट दिया जाए। सभी प्रमुख दल बैकवर्ड एवं शेड्यूल्ड घाघों-हेतु रिजर्वेशनों का प्रतिशत बढ़ाकर अधिक-से-अधिक घाघों को अपने दलों में मिलाना चाहते हैं, क्योंकि लीडरों को इनसे अच्छे चमचे एवं दलाल, जो उनके 'फ्रेड', फिलासाफर एवं गाइड' भी होते हैं, नहीं मिल सकते हैं।

इति 'घाघ पुराणम्!'



खाना

आदमी खाने के लिए जीता है या जीने के लिए खाता है, यह सवाल उसी तरह टेढ़ा है जैसे दुनिया में मुर्गी पहले आयी या अंडा। परंतु आवाम में जो कहावते मशहूर हैं उनसे लगता है कि आदमी की सोच में वह खाने के लिए ही जीता है, इसीलिए कहते हैं कि 'अगर पेट न होता तो आदमी इतना खटराग क्यों करता', 'पापी पेट का सवाल है', 'ग़रीब के पेट पर लात न मारो', 'वगैरह-वगैरह। अगर आप गौर फामाएँ तो एक बात तो साफ़ नज़र आएगी कि आदमी चाहे खाने के लिए जीता हो या पीने (शराब) के लिए, लेकिन हमारी घरेलू औरते तो जैसे खाना पकाने के लिए ही जीती है। सबेरे उठकर चाय-नाश्ता तैयार करना और उसमें फारिग होते ही दोपहर का खाना बनाना और खा-पीकर जैसे ही पलंग पर पीठ लगायी कि फिर चाय और फिर खाना। आपको यह जानकर ताज्जुब होगा कि बिलानागा इतना रियाज करने के बाद भी औरते आदमियों जैसा पुरलुत्फ़ खाना नहीं बना पाती हैं। चाहे मुगलों की रसोई के खास खानसामे की बात आए और चाहे आज के फ़ाइव-स्टार होटलों के हेड-शेफ की तारीफ आदमी की ही की जाती है। मैं काफी मशक्कत के बाद इस अजीबोग़रीब पहिली का राज़फाश करने में कामयाब हो गया हूँ। दरअसल, बात यह है कि औरत रोज़ रसाईखाने में खाना बनाने के लिए घुसी तो रहती है लेकिन उसे खाती बहुत कम है (भला कोई हलवाई अपनी मिठाई थोड़े ही खाता है)। खान का (और पीने का भी) शौकीन तो आदमी है, और जो खाएगा वही तो अच्छे-बुरे का फर्क कर

सकेगा। इसलिए अच्छा खाना बनाने का हुनर आदमी में ही है। इसके अलावा एक वजह और भी है कि खाना पकाना एक कला है और कला होती है स्त्रीलिंग। फिर अच्छी कला को तो आदमी ही अपने पास रखना चाहेगा, औरत को क्या ग़रज़ पड़ी है मौतन पालने की।

खाना खाना भी एक कला है। मेरी माँ मुझे मिखाया करती थी कि सड़प-सड़प करके मत खाया करो, नहीं तो ससुराल में बड़ी बदनामी होगी। मैंने छोटपन से सड़प-सड़प करके खाना घर में पले हुए टामी से सीखा था और मैं अपनी आदत में तब्दीली लाने को तैयार भी नहीं होता अगर कुछ बड़ा होने पर मुझे यह न पता चल जाता कि ससुराल में सालियों भी होती हैं और भला सालियों द्वारा अपनी खिल्ली उड़ाई जाने से कौन मर्द नहीं बचना चाहेगा। लगता है दक्षिण के मर्द अपनी सालियों से खिल्ली उड़ाए जाने से नहीं डरते हैं क्योंकि वे एक हाथ की अजुरी बनाकर और दाल-भात उसमें भरकर ऐसे खाते हैं जैसे कोई फँले हुए कड़ुए तेल का बोतल में वापस भर रहा हो। यह भी हो सकता कि उन मर्दों की सालियों भी खाते समय इसी तरह फँला हुआ तेल बोतल में भरती हो और तब तो उनके द्वारा खिल्ली उड़ाए जाने का सवाल ही पैदा नहीं होता है। चीनी भाइयों का खाने का अपना अलग ही अदाज है, जिस देखकर ऐट-ईटर (चींटी-भक्षक) भी शरमा जाए। दो तीलियों के महारे ढेर सारा चावल दो मिनट में सफ़ाचट कर जाते हैं और मजाल है कि प्याले में एक भी चावल बच जाए।

खाने के शौक भी तरह-तरह के होते हैं। किसी को मुर्गा पसंद है तो किसी को बटेरा। कोई कोर्मा पर लार टपकाता है तो कोई मुसल्लम पर। पर कुछ लोगो में अलग तरह के खाने के शौक भी पाए जाते हैं। मेरे पड़ोसी शहाबुद्दीन साहब को अपनी दृसगी बीवी की गालियाँ खाने का शौक है, क्योंकि रोज़ रात पता नहीं किस बात पर वह बीवी को इतना नाराज कर देते हैं कि मुँहअँधरे ही वह पूरे जोश में उन्हें गालियाँ परोसन लगती हैं, जिनकी खुशबू मेरे घर में भी गमकने लगती है। इसस राज़ सुबह कच्ची नींद जागने से मेरा पारा सातवे अममान पर चढ़ जाता है पर अभी तक मेरी अपने इन पड़ोसी से दुआ-सलाम बंद नहीं हुई है,

क्योंकि मेरी बीवी को कम खाने और गम खाने का शौक है। मेरे गुस्सा होने पर वह भरपूर कोशिश करके मुझे भी धाड़ा-बहुत गम खाने पर मजबूर कर देती है और मैं अपना गुस्सा पी जाता हूँ। इसकी एक वजह और है कि शहाबुद्दीन साहब की पहली बीवी से मेरी बीवी की दाँत-काटी है। एक दिन मैंने इन बड़ी भाभीजान को मेरी बीवी से कहते सुना था कि उनकी सौत बड़ी खसमा खानी है! मैंने बाद में अपनी बीवी से पूछा कि खसम खाने के इम शौक का क्या मतलब है तो उन्होंने बताया, दूसरी बीवी इस शौक के बदौलत अपने पहले के दो शौहरो को जहाँबदर करवा चुकी है। होता यह है कि दूसरी बीवी को झूठ बोलने और उस झूठ को सही साबित करने के लिए दूसरों की कसम खान का बहुत शौक है। चूँकि शौहर के इलावा और कोई इतना नज़दीक नहीं मिलता है, इसलिए जब कभी उन्हें किसी गलत बात को सही साबित करने की जरूरत महसूस होती है, तो शौहर के सर पर हाथ रखकर कसम खा लेती है और वह कसम जल्दी ही अपना असर भी दिखा देती है।' हालांकि दूसरी बीवी के इस शौक की जानकारी से मुझे खुशी होनी चाहिए थी क्योंकि शहाबुद्दीन साहब के जिंदा रहने से रोज़ सबेरे मेरी नीद में खलल पड़ता है, लेकिन मैं एक कमज़ोरदिल इंसान हूँ, इसलिए उस दिन मैं उन्हें इम बारे में आगाह करने से अपने को न रोक सका कि छोटी भाभीजान को ताकीद कर दे कि शहाबुद्दीन साहब का चाहे वह गालियों रोज़ खिलाया करें और उनसे तसल्ली न हो तो जूतियों भी खिला दिया करें, पर उनकी कसम न खाएँ। लगता है छोटी भाभीजान ने शौहर की यह बात मान ली है, क्योंकि अब उनके घर से गालियों और कसमों की आवाज़ आना बंद हो गई हैं, सिर्फ़ जूतियों की आती है।



अहा ग्राम्य जीवन !

ग्राम्य जीवन के अतिथि-सत्कार, पारस्परिक सौहार्द, पारिवारिक प्रेम और आत्मीयता पर अनेक लेख और उपन्यास आपने पढ़े होंगे। मैंने पढ़े भी हैं और बचपन में गाँव में रहकर इन्हें देखा भी है।

जहाँ तक अतिथि-सत्कार का प्रश्न है, मेरे घर जब जीजा या फूफा आया करते थे तो उनके लिए दौड़कर आँगन में निवाड़ का पलंग डाला जाता था, जिम पर ऐसे अवसरों के लिए अलग से रखी गई कालीन संदूक से निकालकर व उसमें लगी पाव-आधा पाव धूल झाड़कर बिछाई जाती थी। कोई पानी लेकर दौड़ता था तो कोई शरबत लेकर। रात को घी में चुपड़ी रोटी खाने और मलाईवाला दूध पीने के बाद जब वे सोने जाते थे तो मुझे उनके पैर दबाने को कहा जाता था। परंतु जब मेरे मामा आते थे, तो वे सबके पैर छूकर सिकुड़े-सिमटे से दरवाजे की दहलीज पर बैठ जाते थे। औपचारिकतावश एक-दो बातें उनसे पूछने के बाद उनसे कहा जाता था, लला, पानी ख़तम हुड गओ है, एक घड़ा कुओं से भर लइयो।' और आज्ञाकारी बालक की तरह मामा पानी लाने के लिए घड़ा उठा लेते थे। लौटने पर उन्हे गुड़ के साथ पानी पुरस्कार स्वरूप प्राप्त हो जाता था। रात को सोने के लिए एक गधाती दरी और तकिया देकर कह दिया जाता था, 'छत पर बड़ी ठंडी बयार चल रही है। हुँअई जाय के बिछाय लेउ।' मेरे ताऊ को साधुओं के सत्कार का बड़ा शौक था, क्योंकि उन्होंने पढ़ रखा था, 'ना जाने किस वेश मे सियाराम मिल जाएँ' यह बात दूर-दूर तक लोगों तक फैल गई थी, इसलिए दूर-दूर

का साधू-सबाधू, चोर-उचक्का, लुच्चा-लफंगा शाम को गेरुआ वस्त्र पहनकर हमारे दरवाजे पर धूनी रमा देता था। मेरे ताऊ उसके चरण दबाते थे और जाते समय दक्षिणा भी देते थे। बस जब वह अंदर उसके लिए खीर-पूड़ी बनाने का आर्डर भिजवाते थे तो ताई खाना बनाते-बनाते साधू महाराज को और ताऊ की अक्ल को निर्बाध गालियाँ देती रहती थी। बानगी के लिए, 'सारा, दुनिया भर को नठया हियई आइ के मरत है।'

मेरे गाँव के पारस्परिक सौहार्द की मिसाल दूर-दूर तक दी जाती थी। यह बात अक्सर कही जाती थी कि मानीकोठी (मेरा गाँव) के लोगन में इत्तो एका है कि आज लौ कोई बाहर बालो मानीकोठी बालन से जीत के नाई लौटो है। जुही एक गाँव है, जहाँ आज लौ डकैतन तक की डकैती डारिबे की हिम्मत नाई परी है।' में भी इस बात से बड़ा प्रभावित था; पर इस बात से भी कम प्रभावित नहीं था कि मेरे पडोस में रहने वाले मेरे खानदानी बाबा से मेरे घरवालों के अनगिनत मुकदमे दीवानी-फौजदारी कचहरियों में चलते रहते थे और प्रायः किसी के परनाले का पानी दूसरे के घर में गिर जाने पर या किसी की बछिया दूसरे के आँगन में घुस जाने पर दोनों घरों की औरतों में चुनिंदा गालियाँ के आदान-प्रदान का सिलसिला आरंभ होता था, जिसमें दूसरे की नाठ हो जाने (वंशनाश हो जाने), बिटिया-बहू की बेइज्जती हो जाने या वदन में कीड़े पड़ने जैसी शुभकामनाएँ बिना किसी प्रकार की कंजूसी के प्रेषित की जाती थीं। मेरे इन्ही बाबा के विषय में मशहूर था कि ग़रीब लोगों की लड़की की शादी में अपने बाग से लकड़ी, पुआल, आदि मुफ्त दे देते थे। यह बात अलग है कि चाहे शादी हो या हारी-बीनारी, जब भी रुपया उधार देते थे, सादे प्रोनोट पर ही अँगूठा लगवाते थे और सिर्फ छत्तीस प्रतिशत की दर पर चक्रवृद्धि व्याज वसूलते थे। साल-दो-साल में उधार लेनेवाला यदि व्याज की किस्त चुकता करने में असमर्थ हो जाता तो मुकदमा करने की धमकी देकर उसकी ज़मीन-मकान भी गिरवी रखवा लेते थे, जो अंत में बाबा की ही हो जाती थी। यदि इसमें भी संतुष्टि न हुई तो अँगूठा-निशानवाले सादे प्रोनोट पर मर्जी के अनुसार उधार की रकम लिखकर कचहरी में पेश कर देते थे। कचहरी को इससे बड़ा सबूत

और क्या चाहिए?

गाँव के सभी परिवारों में पारस्परिक सौहार्द इस क़दर बढ़ा हुआ था कि हर घर के चूल्हे तक की बात सबको मालूम रहती थी और जाड़े की रात को अगेहना (तापने के लिए अग्निकुंड) के चारों ओर बैठकर घुसर-पुसर होती रहती थी कि आजकल किसकी बहू किससे आँख लडा रही है या किसकी बेटी किससे फँसी हुई है; पर यह सब होता पीठ-पीछे ही था और वह भी सिर्फ़ ग़रीबों व कमजोरो के विषय में। पारस्परिक प्रेम का इससे बड़ प्रदर्शन क्या होगा कि किसी के घर में किसी की मृत्यु हो जाने पर गाँव की औरते उसके यहाँ इकट्ठा होकर बुक्का फाड़कर रोती थीं। अगर दूसरे गाँव से ब्याहकर आई नई बहू पूरे जोश से नहीं रो पाती थी तो दूसरी 'औरत' बाद में ताने मारती थीं, 'हाय, बहू की अम्मा ने जाए रोइबोऊ नाई सिखाओ।'

गाँव में परिवार के अदर के प्रेम से मैं सदा अभिभूत रहा हूँ। दादी, ताई, पिता, चाचा, भाई, भतीजे, पोते सब एक साथ रहते थे। सबका खाना एक चूल्हे पर बनता था और दादी-ताई सब बच्चों को बिठाकर एक साथ कहानियाँ सुनाती थीं। परिवार की सभी अनब्याही लड़कियाँ देवी का स्वरूप समझीं जाती थीं और तीज त्योहार पर पूजी जाती थी। यह बात अलग है कि घर में लड़का पैदा होने पर ढोलक बजती थी और बताशा बँटते थे तथा लड़की पैदा होने पर मुर्दनी-सी छा जाती थी। इसी तरह किसी लड़के की मृत्यु हो जाने पर महीनो माहौल गमगीन रहता था और लड़की का क्रियाकर्म करने के तुरंत बाद एक दो मसखरे धीरे से यह जरूर कह देते थे, 'चलो, पूरे दस हजार की डिग्री रद्द हो गई। दहेज के पूरे दस हजार बच गए।' मेरी बड़ी भाभी सन् 1945 में ब्याहकर आई थीं। दहेज में अन्य चीजों के अलावा एक ग्रामोफोन, एक सायकिल और एक घड़ी भी लाई थीं, जो इस ज़माने के टी.वी, मोटरसाइकिल और फ्रिज से कम नहीं थे। परछन आगमन पर उनकी आरती उतारी गई थी और चूँकि वह बड़ी बहू थीं, जल्दी ही उन्हें घर की सारी जिम्मेदारी सौंप दी गई थी, जिसमें सुबह चक्की से आटा पीसना, झाड़ू-बुहारू करना, तीनों वक्त का खाना बनाना और सबको खिलाकर ही स्वयं खाना शामिल था।

मेरी ताई का दिन मे दो-चार बार उन्हें गरिया देना और उनके माँ-बाप क नीच खानदान की याद दिला देना जन्मसिद्ध अधिकार था। ऐसे अवसरो पर इस अधिकार का उपयोग करन मे घर के अन्य सदस्य भी नही चूकते थे। बेचारे भाईसाहब को और न सही तो कम-से-कम अपनी मर्दानगी दिखाने के लिए सब घरवालो का साथ देना ही पडता था, नही तो वह घर-बाहर सब जगह 'जोरू के गुलाम' मशहूर हो जाते।

मैं हैरान हूँ कि फिर क्यों ढलती वय में आज मुझे लगता है कि मेरे गाँव में एक जीवत आत्मा थी, जो कभी बागो की बयार-जैसी सनसनाती, पीपल के पत्तो की तरह खड़खड़ाती, कलियों की तरह मुस्कराती, वर्षा की फुहार जैसी बरसनी और हेमत के शीत सम किटकिटाती थी। वह शहर के ककरीटों के भवनो के समान निश्चल व हृदयहीन नहीं थी। पता नहीं यह भूत का सत्य है अथवा बाल्यकाल का वृद्धावस्था पर कटाक्ष!



क्विलयर फंडा

भारत एक बहुत बड़ा देश है। इसमें कई बड़े और छोटे प्रदेश हैं, जिनका प्रशासन कई प्रकार के बड़े और छोटे नौकरशाह चलाते हैं। सरकारी नौकरी मिलने पर इन्हे नियमानुसार कई बड़ी और छोटी कसम खानी पड़ती है। जैसे संविधान में आस्था की कसम, ईमानदारी की कसम, निष्पक्षता की कसम, आदि-आदि। कुछ मूढमगज मनुष्य इन कसमों को बड़े मनोयोग से खाते हैं, और अपने सेवाकाल में इन्हें निभाने का प्रयत्न भी करते हैं। ऐसे नौकरशाहों को घरवाले एवं मित्र प्रायः नालायक अथवा बुद्ध समझते हैं, और उनके उच्चस्तरीय अधिकारी और मंत्री उन्हें शंका की दृष्टि से देखते हैं। घरवाले नालायक इसलिए समझते हैं कि नियम से काम करने के कारण वे उनको अवैध लाभ अथवा नियुक्तियाँ नहीं दिला पाते हैं और मित्र एवं हितैषी बुद्ध इसलिए समझते हैं कि आजकल की मारकाट कर आगे बढ़ने की दौड़ में ऐसा स्वविनाशी आचरण कोई सिरफिरा या बुद्ध ही कर सकता है। उच्चाधिकारियों द्वारा इन्हें शंका से देखे जाने का कारण सर्वथा स्पष्ट एवं उचित है। ऐसे नौकरशाह चाहे उच्चाधिकारियों के कारनामों में रुकावट डालें या न डालें परंतु सहायक तो नहीं ही होते हैं। पीठ-पीछे उच्चाधिकारी इनके लिए प्रायः कहते हैं कि अजब 'घनचक्कर' है। अतः शासन में कार्यरत यह जानवर धोबी का गधा बन जाता है, न घर का, न घाट का।

संविधान की कसम खानेवाले नौकरशाहों में दूसरी कोटि के वं लोग होते हैं, जिनके 'फडाज' नौकरी के लिए प्रतियोगिता में बैठने के

पहले से ही 'क्विलयर' होते हैं। वे जानते और मानते हैं कि कसमें खाने के लिए होती हैं निभाने के लिए नहीं। वे आरभ से ही 'अपने परिवार, अपने शुभचिंतकों और अपने बॉसों' के सुखो एवं हितों का प्रगति-पथ पर प्रशस्त करने लगते हैं और अपना इहलोक एवं परलोक दोनों सुधार लेते हैं। उनकी बुद्धि, चातुर्य एवं कौशल की हर ओर प्रशंसा होती है और सफलता उनके चरण चूमती है। यदि कभी कोई अपवाद होता भी है तो केवल उपर्युक्त नियम को प्रमाणित करने के लिए। परंतु इनके कार्य करने की शैली में भिन्नता पाई गई है और एक अध्ययन के अनुसार उनकी शैलियों को निम्नलिखित तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है--

1 अकर्मण्यता :

सरकारी नौकरी में सफलता-हेतु यह शैली कई मामलों में बड़ी कारगर पाई गई है। इसके लाभ बड़े स्पष्ट हैं। यदि कोई कार्य न करने की सुख्याति प्राप्त हो गई, तो 'बॉस' कार्य नहीं देता है और जब काम न किया जावे तो किसी काम के ख़राब होने का दोषारोपण आप पर नहीं किया जा सकता है। जब कोई दोषारोपण न हो, तो कम-से-कम 'मतोषजनक' 'वार्षिक मन्तव्य' दे देना बॉस की नैतिक बाध्यता हो जाती है और 'अयोग्य को छोड़कर सभी को प्रोन्नति' के सरकारी मानदंड के अनुसार प्रोन्नति सुनिश्चित रहती है। परंतु चूँकि 'अकर्मण्यता' के सिद्धांत पर चलनेवाले नौकरशाहों के पास 'बॉस' और नेताओं से मीठी-मीठी बातें करने एवं उनमें चापलूसी का आवश्यकतानुसार पुट मिला देने-हेतु काफी फालतू टाइम होता है, अतः ऐसे नौकरशाह को प्रायः उत्तम कोटि का वार्षिक मन्तव्य दे देना बॉस की नैतिक बाध्यता हो जाती है। एक अनुभवी नौकरशाह ने यह सूत्रवाक्य प्रतिपादित किया था, 'आपका वार्षिक मन्तव्य आपके अपने 'बॉस' से व्यक्तिगत संबंधों का प्रतिबिंब है और इसका आपकी कार्यक्षमता से कोई सरोकार नहीं है।'

इस श्रेणी के नौकरशाह इतने लोभी नहीं होते हैं, जितने कामचोर और वे अपने लक्ष्य को आसानी से प्राप्त कर सुखमय जीवन व्यतीत करते हैं। यदि उच्च पदधारक हुए तो जनता उनकी प्रशंसा में कहने लगती

है कि राजा आदमी हैं और यदि निम्न पदधारक हुए तो बावा आदमी से जाने जाते हैं। प्रथम श्रेणी वालों को 'डाली' (प्रजा की राजा को भेंट) की प्राप्ति होती है और द्वितीय श्रेणी वालों को पूजा स्वरूप भेंट की प्राप्ति होती रहती है।

2 निर्र्थक-कर्मण्यता :

इस शैली के नौकरशाह सदैव मनोविश्लेषकों को शोध-हेतु रुचिकर विषय प्रस्तुत करते रहे हैं। 'ये लोग सदैव व्यस्त दिखाई देते हैं, फाइलों पर लबी-लबी नोटिंग लिखते हैं, अपने से निम्नस्तर के कर्मियों को डाँटते-फटकारते रहते हैं, प्रस्तावों का बिदुवार विश्लेषण करके स्पष्टीकरण और आख्याएँ मँगाते रहते हैं परंतु इस सारी कसरत का निहित उद्देश्य होता है कि उन्हें किसी विषय पर स्पष्ट आदेश देने का उत्तरदायित्व न लेना पड़े।

ये सरकारी कार्य की प्रगति के सोफिस्टिकेटेड' बाधक हैं। अपनी तगड़ी 'डिफेंस मेकेनिज्म' के कारण वे स्वयं को सदैव बचाए रहते हैं।

इनमें से जो धन-प्राप्ति के प्रकरणों में निर्णय लेने में झिझकते नहीं हैं, वे सपरिवार सकुशल रहकर सपन्नता को प्राप्त होते हैं और जो धन-प्राप्ति के मसलों में भी निर्णय लेने से कतराते हैं, वे मानसिक एवं आर्थिक दोनों प्रकार के दुखों को प्राप्त करते हैं। इनके साथ काम करने वाले कर्मि बिना अपवाद के कष्टमय स्थिति को प्राप्त होते हैं।

3 विलंबित-कर्मण्यता :

इस शैली से काम करनेवाले नौकरशाह सबसे अधिक सजग, सफल एवं श्रेष्ठतम श्रेणी में आते हैं। इनके ज्ञान-चक्षु पूर्णतः खुले रहते हैं, क्योंकि ये जानते हैं कि यदि किसी व्यक्ति का कार्य समय से नियमानुसार निपट जाता है तो— 1. वह व्यक्ति उनके पास क्यों आएगा, 2. उनको घास क्यों डालेगा, और 3. उसे क्या कुत्ते ने काटा है जो स्वतः निपट जानेवाले कार्य के लिए उनकी जेब गर्म करता फिरेगा।

इसलिए इनका मूलमंत्र होता है कि पहले फाइल को दबाए रखो

फिर उसमे गर्जमद से पहिए लगवाओ और तभी आगे बढ़ाआ। इन नौकरशाहों के प्रयत्नो से फाइल मे पहिया लगवाना एक फलता-फूलता धधा बन गया है, इसलिए नए उद्यमियो ने पहिए लगाने की कला के 'एक्सपर्ट्स' को 'कन्सलटेट' की उपाधि से विभूषित कर स्थायी आधार पर 'एम्प्लाय' कर रखा है। ये कन्सलटेट्स' सही साइज के पहिए हमेशा तैयार रखते है और हर स्टेशन पर उचित साइज के पहिए फाइल मे लगा दते है। इसलिए पहिए लगाने में माहिर लोगो के काम तो आनन-फानन मे निपट जाते हैं और पहिया-विहीन प्रकरणो की फाइलो पर नौकरशाह खुराटे लेकर सोते रहते है ।

इस शैली के अपनाने से इन चतुर नौकरशाहो के तन और मन दोनों प्रफुल्लित रहते है। पहिया लगानेवाले उद्यमी इनकी तारीफ करते नहीं अघाते है, जिससे ये यश प्राप्त करते है और पहियायुक्त फाइले देखकर उच्चतम स्तर पर भी इनको योग्य और काम का आदमी समझा जाता है। उच्चतम स्तर पर ऐसे नौकरशाह सदैव 'डिमाड' में रहते है ।

ये नौकरशाह न सिर्फ अपना, अपने परिवारीजनों, इष्टमित्रो का इहलोक एव परलोक सुधार लेते हैं वरन् आनेवाली सात पीढियां की सुख-सुविधा का पूर्णप्रवध करने के उपरांत ही देश की जनता को त्राण देते है।



‘जीरो टौलरेंस बनाम इंफ़ाइनाइट टौलरेंस’

कुछ दिन पहले एक अख़बार में पढ़ा था कि न्यूयार्क की पुलिस-प्रणाली सीखन (गुप्त उद्देश्य-ठंडी हवा खाने) गई भारतीय पुलिस अधिकारियों की एक टीम को न्यूयार्क के पुलिस कमिश्नर ने ‘जीरो टौलरेंस पुलिसिंग’ का सिद्धांत सिखाने का प्रयत्न किया था, जिसके अनुसार छोटे-से-छोटे कानून तोड़ने के अपराध को अनदेखा अथवा क्षमा नहीं किया जाता है। उनके अनुसार छोटे अपराधों को अनदेखा कर देने से ही लोगों का हौसला बढ़ता है और वे बड़े अपराध करने का साहस करने लगते हैं। उन्होंने बताया कि इसके परिणामस्वरूप न्यूयार्क नगर में हत्या, लूट, बलात्कार-जैसे गंभीर अपराधों में पिछले तीन वर्षों में 30 से 50 प्रतिशत की कमी आई है। उस टीम ने यह भी पाया कि पाश्चात्य देशों में प्रायः सभी कार्यक्षेत्रों में ‘जीरो टौलरेंस’ का सिद्धांत अपनाया जाता है। वहाँ किसी भी व्यक्ति को कार्य सौंपते समय उस पर विश्वास कर उसे उमके समुचित सपादन-हेतु पूर्णतः उत्तरदायी बना दिया जाता है और उसके कार्य करने के दौरान प्रायः कोई ‘इटरफियरेस’ अथवा ‘सुपरविजन’ नहीं किया जाता है। उस व्यक्ति से यह आशा की जाती है कि यदि उसे किसी सलाह अथवा जानकारी की आवश्यकता हो, तो वह समुचित स्तर पर स्वयं संपर्क करे। दिए गए कार्य में असफल होने अथवा उसमें जानबूझकर कोई गड़बड़ी करने पर किसी प्रकार की दया अथवा क्षमा दिखाने के बजाय उसे कड़ा दंड दिया जाता है, जो प्रायः सेवाच्युत करने से कम नहीं होता है।

खुदा का शुक्र है कि भारतीय अधिकारी किसी कच्ची मिट्टी के नहीं बने हैं और खूब चिकने घड़े हैं, उन पर पुलिस कमिश्नर साहब की इस 'ट्रेनिंग' का उसी प्रकार कोई 'कुप्रभाव' नहीं पड़ा, जैसा प्रतिवर्ष विभिन्न सेवाओं के विदेशों में प्रशिक्षण-हेतु जानेवाले सैकड़ों अधिकारियों पर नहीं पड़ता है, नहीं तो यहाँ की पुलिस भी न्यूयार्क पुलिस की तरह जीरो-टौलरेट यानी बेरहम' हो गई होती। मुझे तो लगता है कि सीआईए या आईएस.आई. की किसी गुप्त योजना के अंतर्गत न्यूयार्क के पुलिस कमिश्नर हमारे पुलिस-अधिकारियों का 'ब्रेन-वाश' करना चाहते थे, अन्यथा क्या उन्हें यह ज्ञात नहीं है कि भारत एक प्राचीन देश है और सहृदयता, उदारता एवं क्षमा के गुण यहाँ की सस्कृति के महत्त्वपूर्ण अंग माने जाते हैं। यहाँ अपनाए जानेवाले सभी धर्मों के अनुयायी अपने-अपने धर्म को अधिक-से-अधिक उदार एवं क्षमाशील सिद्ध करने में गर्व समझते हैं, पाश्चात्य सभ्यता को हेय दृष्टि से देखते हैं और पाश्चात्य देशों में प्रचलित 'जीरो टौलरेस' सिद्धांत के वजाय 'इन्फाइनाइट टौलरेस' का सिद्धांत अपनाते हैं। यही तो इस देश की महानता है।

'इन्फाइनाइट टौलरेस' की परंपरा इस देश की प्राचीन परंपरा रही है और देशवासियों ने इसका सदैव खुले दिल से उपयोग किया है। इस तथ्य को सिद्ध करने-हेतु मैं कतिपय उदाहरण प्रस्तुत करने का साहस इस भरोसे पर कर रहा हूँ कि अपनी अनंत क्षमाशीलता का प्रदर्शन करते हुए सर्वोच्च वर्गों एवं समुदायों के महानुभाव मुझे उनकी 'वेल-डिजर्ड' प्रशंसा करने की इस धृष्टता-हेतु क्षमा कर देंगे।

'समर्थ को नहीं दोस गुसाई' में हमारा अटूट विश्वास है और समर्थ के प्रति हम सदैव क्षमाशील रहते हैं। यदि इंद्र अहिल्या के पति का रूप धरकर उससे सहवास करते हैं तो इंद्र को कौन दोषी कह सकता है। वह तो स्वर्गाधिपति है। हाँ, अहिल्या को युगों तक पत्थर बना रहना ही चाहिए, क्योंकि अनजाने में ही सही, एक स्त्री ने ऐसा घृणित कार्य किया है, जिस पर पुरुष-वर्ग का एकमात्र अधिकार है। भारत में रहनेवाले अन्य समुदायों के ग्रंथों में भी ताकतवर के प्रति इस प्रकार की 'अनंत क्षमाशीलता' के अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं; परंतु मेरे प्रिय पाठको!

उनका वर्णन कर किसी फ़तवे के तहत जिबह किया जाना मुझे बुद्धिमानि नहीं लगती है।

पृथ्वीराज चौहान द्वारा मुहम्मद गोरी को युद्धभूमि में सोलह बार पराजित कर छोड़ देना हमारी अनंत 'क्षमाशीलता' का 'उत्कृष्ट' उदाहरण है, चाहे बाद में उसके लिए पृथ्वीराज चौहान का मुहम्मद गोरी द्वारा अपनी आँखें ही क्यों न फुड़वानी पड़ी हों।

इतिहास कहता है कि औरंगजेब द्वारा अपने पिता व भाइयों तथा विधर्मियों के प्रति घोर अत्याचार किए गए, पर हम इस महान देश के वामी इसमें औरंगजेब को क्रूर कैसे कह सकते हैं? आखिर वह था तो एक बादशाह और उस पर पाँच वक्त का नमाजी भी! अँग्रेजों के प्रति हम न केवल क्षमाशील हैं वरन् कृतज्ञ भी हैं, क्योंकि उन्होंने हमें आधुनिक क़ानून, सभ्यता एवं शिक्षा तथा तकनीक से परिचित कराया। यह बात अलग है कि व्यावहारिक रूप में यह क़ानून गोरों के लिए पूर्णतः भिन्न था, सभ्यता केवल गोरों के पिट्टुओं-हेतु थी और शिक्षा तथा तकनीक का विस्तार ब्रिटेन के हित-साधन तक सीमित था।

हमारी जनता में उदारता की अपार क्षमता है। जैसे सत्तापक्ष यदि आज किसी व्यक्ति के विरोधीदल में होने पर उसके काले कारनामों की जाँच बिठाता है अथवा चुपचाप पुलिस का उसका 'एन्काउंटर' करने का हुक्म देता है और कल उसके पाला बदलकर सत्तापक्ष में आ जाने पर उसे मंत्री बना देता है, तो जनता सत्तापक्ष के इस तर्क को बिना हिचक स्वीकार कर लेती है कि जब तक किसी व्यक्ति को न्यायालय अपराधी घोषित न कर दे, तब तक कल के घसियारे को आज करोड़ों का मालिक बन जाने से अथवा उसके विरुद्ध पुलिस-रिकार्ड में दस-बीस हत्या-अपहरण के मामले दर्ज होने से वह मंत्रित्व के अयोग्य नहीं हो जाता है। देश के नेताओं के विचार इस विषय में और भी स्पष्ट हैं कि ये तो मूल अर्हताएँ हैं, जिनके बिना कोई सफल नेता हो ही नहीं सकता।

यदि समाजवाद की दुहाई देनेवाला व्यक्ति यह कहे कि दस करोड़ प्रतिवर्ष 'टर्नओवर' के उद्योग का मालिक पिछड़ा व ग़रीब है और शासकीय नियुक्तियों में लाभ उसे मिलना चाहिए, न कि रमुआ किसान

अथवा ललुआ मजदूर को, तो हमारे विचार में यह तर्क न केवल स्वीकार्य है वरन् उस व्यक्ति के उदार हृदय का परिचायक भी है।

बेईमान अधिकारियों को कमाऊ स्थानों पर नियुक्त किए जाने का कारण तो कोई सिरफिरा भी समझ सकता है। फिर मैं यहाँ इस विषय पर मगजपच्ची क्यों करूँ? भारतीय जनता एव लीडरान में इस विषय पर काइ मतभेद नहीं है कि कमाऊ प्लूटों के प्रति 'इन्फाइनाइट टौलरेस' दिखाया और 'खाओ और खाने दो'। बस ईमानदारों का जीना हराम रखो।

चूँकि हमारा दृढ़ विश्वास है कि पाश्चात्य सस्कृति हमारी सस्कृति की विनाशक है, अतः हम शासकीय सेवाओं के क्षेत्र में पाश्चात्य प्रक्रियाओं, व्यवस्थाओं और मान्यताओं के ठीक उल्टी कार्य-संस्कृति अपनाकर अपनी श्रेष्ठता की रक्षा कर रहे हैं। उदाहरणतः हम किमी कर्मचारी की योग्यता और ईमानदारी पर विश्वास नहीं करते हैं और हर कर्मचारी के कार्य में दखलदाजी करने के लिए एक पर्यवेक्षक अधिकारी नियुक्त करते हैं। इसका प्रत्यक्ष लाभ यह होता है कि पर्यवेक्षकों की संख्या काम करनेवालों की संख्या से अधिक रहती है और काम ख़राब होने पर कोई कभी भी स्वयं को उत्तरदायी नहीं अनुभव करता है। हमन सोच-मोचकर ऐसी व्यवस्था बनायी है कि किसी व्यक्ति-विशेष का उत्तरदायित्व सुनिश्चित न हो जाए, जैसे जनपद में पुलिस-विभाग का काम यदि पुलिस-अधीक्षक का है तो उसके काम में दखलदाजी का अधिकार जिलाधिकारी को भी है। इसका एक ही लाभ है कि नगर में दगा या अन्य अव्यवस्था हो तो दोनों अधिकारी एक-दूसरे की गलतियों छिपाकर अथवा एक-दूसरे के सिर पर दोष मढ़कर साफ़ बच जाते हैं और इस प्रकार हम किसी को दोषी सिद्ध न करके अपनी अनत क्षमाशीलता प्रमाणित करने में सफल रहते हैं।

यदि कोई अधीनस्थ कर्मचारी कोई दंडनीय कार्य करता है और जाँच करनेवाला अधिकारी उसे दंड दिलाने की 'दुरूह एव रिस्की' प्रक्रिया से गुजरने का साहस करता है तो दंड देने-हेतु सक्षम अधिकारी को दंड देने से पूर्व उस कर्मचारी की जाति, धर्म, बाल-बच्चों अथवा कमाऊपन का ख़याल अवश्य करना पड़ता है और यदि वह इन सबस

ऊपर उठकर उसे दड दे भी देता ह तो उच्चतर स्तर पर अपील ओर शासन में रिवाज़न के समय काम बन जाता है। यदि इन स्थानों पर भी कोई 'सोर्स' न लग सका, ता ट्रिबुनल, न्यायालय और उससे ऊपर क न्यायालय कहाँ गए हैं! कहीं-न-कहीं 'रिलीफ' मिल ही जाती है। इस देश के कर्मचारियों का दृढ़ विश्वास है कि यदि खर्च करने के लिए पर्याप्त धन कमा लिया गया है ता किसी-न-किसी स्तर पर 'उदारहृदय' निर्णायक से 'रिलीफ' अवश्य मिल जाएगी। वैसे इतने झंझट मे पड़ने की नौबत कम ही आती है, क्योंकि कोई ईमानदार एवं निरीह कर्मों ही किसी उच्चाधिकारी को इतना मौका देता है कि उसके विरुद्ध कार्यवाही पूर्ण कर सके। प्रायः उसके पहल ही उस अधिकारी का बोरिया-बिस्तर बँधवा दिया जाता है। अपने पैसों के जोर से किसी उच्च अधिकारी का स्थानांतरण किसी-न-किसी भारी-भरकम नेता की प्रतिष्ठा का प्रश्न बनवा देना कोई कठिन काम नहीं है। पैसेवालों के प्रति उच्चतम स्तर पर भी हम अपनी 'टैलरेंस' दिखाने मे कभी भी कजूसी नहीं करते हैं।

ब्रिटिश कानून के अंतर्गत माना जाता है कि चाहे निन्यानवे अपराधी छूट जाएँ, एक निर्दोष को दड नहीं मिलना चाहिए। हमारी 'इन्फ़ाइनाइट टैलरेंस' की कानून-व्यवस्था की मान्यता है कि कम-से-कम नौ सौ निन्यानवे अपराधियों को छोडने के बाद ही एक व्यक्ति को दडित करने की बात सोची जा सकती है। चौकिए नहीं। इसको साधारण गणित से प्रमाणित किया जा सकता है। हमारे देश मे घटित एक हजार अपराधा मे लगभग आठ सौ अपराधों में पुलिस इसलिए कार्यवाही नही करती है, क्योंकि वे असंज्ञेय है और कानून उनमें पुलिस को हस्तक्षेप करने का अधिकार ही नही देता है। जैसे यदि आप किसी को सौ जूते मारें पर हड्डी न टूटने दें, तो पुलिस इस अपराध का सज्ञान नही ले सकती है। शेष दो सौ मे सौ ऐसे होते हैं, जिनमें अपराध से पीडित व्यक्ति अपनी अथवा अपनी बहू-बेटी की इज्जत का खयाल कर, या अपराधियों के भय से, या पुलिस के भय से, अथवा कचहरी मे झेलनेवाली जहमत बेइज्जती एवं उसकी निरर्थकता को सोचकर थाने में रिपोर्ट ही नही लिखाते है अथवा उनकी रिपोर्ट लिखी ही नही जाती है। शेष सौ मे रिपोर्ट

लिखाने के बाद मुश्किल से बीस-पच्चीस में पुलिस सही अपराधी का पता लगा पाती है ओर केवल आठ-दस में उस पर अभियोग चलाने लायक साक्ष्य इकट्ठा कर पाती है। दस-पाँच साल की कसरत के बाद इनमे से एक-आध में ही अपराधी दंडित हो पाता है। इस प्रकार नौ सौ निन्यानवे अपराधियों के प्रति हम अपनी पूरी क्षमाशीलता दिखाने के बाद ही एक को दंडित करते हैं, बशर्ते उसके पास आगे अपील कर जमानत कराने का खर्चा-पानी न हो ।

मुझे दृढ़ विश्वास है कि हम अपनी उच्चकोटि की सस्कृति का पाश्चात्य दुष्प्रभावों से बचाए रखने-हेतु पूर्व की भौति चैतन्य रहेंगे और अपनी 'टैलरेस-लिमिट्स' को यथासभव बढ़ाते रहेंगे। तभी तो हमारा भारत महान रहेगा न?



खोटी अठन्नी का मलौटा

मलौटे को तो फूटना ही था, क्योंकि वह खोटी अठन्नी से ख़रीदा गया था। भला छोटे सिक्के को धोखे से चलाकर ख़रीदी चीज़ साबुत रह सकती है और वही हाल मलौटे का हुआ। वैसे मलौटे के फूटने की सिर्फ़ यह गैबी (दैवीय) वजह ही नहीं थी, बल्कि मलौटा इसलिए भी फूटा था कि—

(अ) मलौटा मिट्टी का बना था।

(ब) मलौटा मडहा (कमरा) के दरवाज़े की दहलीज के पास रख दिया गया था और

(स) उम्र दहलीज को काम के सिलसिले में बार-बार करना बड़ी (घर की एकमात्र बहू जो सबसे बड़े बेटे को ब्याही थी) की मजबूरी थी।

मुख़्तसर में बात इतनी हुई थी कि मुँह-अँधेरे चारपाई से उठकर वड़ी मडहा में रखे कुठिया से मक्का निकालने गई थी, जिसे सबेरे-सबेरे चकिया पर पीसकर उन्हें घर-भर की रोटी बनानी थी। मक्का से भरी डलिया लेकर चौखट लॉघते समय उनका बायों पैर मलौटा में टकरा गया और चोट खाया मलौटा जब अपने स्थान से भागने को हुआ, तो लकड़ी की मोटी शहतीर की बनी दहलीज से टकराकर टुकड़े-टुकड़े हो गया था। मलौटे को भी बड़ी में ही टूटना था। वह बहरी अम्मा (दादी) के पैर से भी टूट सकता था या फिर अंधी ताई के पैर से लड़ सकता था, नहीं तो हलबला कर जल्दी-जल्दी चलनेवाली जिज्जी (घर की बड़ी बेटी) के पैर से टूट सकता था नहीं तो विनय और उसके दादा (उससे बड़े भैया)

कौन कम सिलबिल्ला थे कि ऐसे सधकर चलते हो कि उनके पैरों से न टूट सके। पर खोटी अठन्नी मे खरीदा मलौटा अपना खोट दिखा ही गया। वह बड़ी के ही पैर से टूटा।

हुआ यूँ था कि बड़ी के दो देवर विनय और दादा, जा अभी तक छोटे और अनब्याहे थे, तीन दिन पहल दोबा का मेला देखने गए थे। जाते समय उन्हें मेला में खर्च के लिए एक-एक अठन्नी दी गई थी। उन दिनों अठन्नी का मूल्य कम नहीं होता था, क्योंकि जलेबी एक आना की एक छटौंक आ जाती थी और मूँगफली आधा पाव। उनके गाँव से दोबा आठ मील दूर था पर दूसरे मेलहारों के साथ वे हँसते-खेलते आठ मील चले गए थे-भला मेला जाने में भी कोई थकता है। हाँ मेला में पहुँचते-पहुँचते रात हो गई थी और दोनों का भूख भी खूब लग आई थी। मेला में घुसते ही खाजा की एक दुकान दिखाई दी, जिस पर हडा (पेट्रोमैक्स) झकझकाकर जल रहा था, पर खाजा खरीदन की उनकी हिम्मत नहीं हुई। आगे लाल इमली के गर्म कबलवालों, इटावा क असली घी वालों मुरादाबादी पीतल के बर्तन वालों और अलीगढ़िया चाकूवाला की दुकानें थी। उनके आगे मूँगफली का एक ठला दिखाई दिया, जिस पर एक ढिबरी जल रही थी। दो पाव मूँगफली लेकर मूँगफली वाले का अठन्नी पकड़ाने पर वह पहले उसे हाथ के अँगूठे व तर्जनी में फँसाकर सहलाता रहा, फिर ढिबरी की लौ के पास ले जाकर बोला, 'यह तो खोटी है।' और अठन्नी वापस कर दी। मजबूरन उन्हें दूसरी अठन्नी देनी पड़ी। अब बचे सिर्फ चार आने, जो दोनों का भूख मिटाने-भर को भी काफी नहीं थे-मेले के और खर्च की बात तो अलग। पर मेले में एकआध जगह और प्रयत्न करने पर भी खोटी अठन्नी न चल पाई, वरन् दूकानदारों की उल्टी-सीधी बातें भी सुननी पड़ीं। पर उन्होंने अपने गाँव क मुरारी चाचा और कढ़ोरे बाबा आदि से उनके द्वारा जाली नाट या खोटे सिक्के किसी अनजान या बुद्धू दुकानदार के यहाँ चला देने के उनकी होशियारी के कई किस्से सुन रखे थे। इसलिए वह भी ऐसे ही दुकानदार की तलाश में घूमते रहे। जैसी कि कहावत है 'जिन खोजा तिन पाइयो, गहरे पानी पैठ', उसी के अनुसार उन्हें भी मेले के एक किनारे पर मिट्टी के बर्तन

बेचनेवाली एक कुम्हारिन बुढ़िया मिल गई। उसकी ढिबरी में तेल कम होने के कारण ढिबरी बहुत हल्के-हल्के जल रही थी और वह उसे देखकर समझ गए कि इसकी आँखें भी कमजोर होंगी। दादा ने आगे बढ़कर एक बड़े से मलौटा की ओर इशारा करते हुए पूछा, 'यह कितने का है?' वह कुम्हारिन मलौटे को ध्यान से देखकर बोली, 'अठन्नी का'। दादा ने मोल-भाव करना ठीक नहीं समझा और जेब से निकालकर खोटी अठन्नी थमा दी। बुढ़िया ने अपने रतौंधी वाले नेत्रों से उसे देखा और अठन्नी अपनी धोती के छोर में बाँध ली। हो सकता है कि वह मन-ही-मन मुस्कराई थी हो कि बच्चे हैं, मोल-भाव करना नहीं आता, इसीलिए छः आने का मलौटा अठन्नी में लिए जा रहे हैं, पर वे दोनों 'बच्चे' मलौटा उठाते समय अवश्य ही मुस्करा रहे थे कि खूब चलाई अठन्नी। मुँह-अँधेरे ही वह लोग दूसरे मेलहारों के साथ वह मलौटा लेकर अपने घर वापस चल दिए। रास्ते में उसे कभी विनय सर पर लादता, कभी दादा। घर पहुँचते-पहुँचते बदन लस्त हो रहा था और मर पस्त।

अब सवाल उठता है कि टूटा मलौटा एक सा चाह वह किसी के भी पैर से टूटा हो, तो फिर बड़ी के पैर से ही टूटने में क्या खांट हो गई? जवाब है कि बड़ी के पैर से टूटने में घर में सबको कोहराम मचाने का एक मुद्दा मिल गया कि हाथ कितनी मुश्किल से खोटी अठन्नी चलाकर और कितनी मशक्कत से लादकर लड़के मलौटा लाए थे और बेमहूर (बेशऊर) बड़ी ने उसे तोड़ दिया। बड़ी पर हर तरफ़ से इल्जामों की बौछार होने लगी, जिनमें कुछ छँटे इल्जाम उनके माँ-बाप व खानदान तक के नाम पेश किए गए।

बहरी अम्मा आँखों पर मोटा चश्मा चढ़ाकर मलौटा के टुकड़ों का सूक्ष्म निरीक्षण करते हुए बोली, 'हाथ कुलच्छिनी, तुम्हारी अम्मा ने तुम्हें यही सहूर सिखाया था और फिर इस घर का नाश करने हमारे यहाँ पटक दिया। आने दो लला (बड़ी के पति) को, जो तुम्हारे ऊँट जैसे पाँव कटवा के न रख दूँ ।' अंधी भौजी की छठी इंद्रिय बहुत चुस्त थी, वह दहलीज से खटाक की आवाज़ सुनकर ही चौकन्नी हो गई थी कि हो न हो, बड़ी ने मलौटा तोड़ दिया है और अम्मा की बात पूरी होने से पहले ही वह

सर पीटने लगी, 'हाय, कैसी नासपीटी बहू आई है इस घर में। जाने कब तक हमारी छाती पै मूँग दलेगी ... मर-वह जाए तब भी छुटकारा मिले।' जिज्जी अपनी आदत के अनुसार झाड़ू लेकर तनफनाती हुई मलौटे के टुकड़े साफ करने दौड़ी और उनके मुँह से अनवरत बड़े-बड़े विशेषण निकलने लगे। लाछनों एवं अवांछनीय विशेषणों पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने का अधिकार बड़ी को नहीं था। ऐसा करना तो इस घर की अस्मिता और घर की परंपराओं को भंग करना होता और ऐसा अधिकार देने से घर के अन्य सदस्यों की बड़ी के विरुद्ध लामबंदी निष्फल हो जाती। बड़ी को लगभग प्रतिदिन अपनी व अपने खानदान की इस अनुचित प्रशंसा-हेतु इस प्रकार के विशेषण सुनने को मिलत थे। उन्हें चुपचाप अपने आँसू पीकर सहते रहने का पुख़्ता अभ्यास भी हो चुका था।

इस दैनिक क्रिया के दौरान वह कभी-कभी विनय अथवा दादा (अर्थात् अपने दोनो देवरो) के चेहरो पर उनके प्रति थोड़ी-बहुत सहानुभूति का आभास अवश्य पा जाती थीं, जो हो सकता है कि उनकी घुटन को कभी-कभी कुछ सहने-लायक बना देता हो। पर आज तो उन दोनों के चेहरे भी खोटे हो रहे थे। आखिरकार वही तो खोटी अठन्नी का मलौटा लाए थे।

